Digitized by eGangotri

कलाकार का सत्य

श्रीराम शर्मा, साहित्यरत्न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

sut

Digitized by eGangotri

Rajeev

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

श्री विदर्भ हिन्दी साहित्य—समिति, संख्या—२

कलाकार का सत्य

लेखक

श्रीराम शर्मा, साहित्यरत्न

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

★

प्रकाशक

श्री विदर्भ हिन्दी साहित्य समिति
अकोला (बरार)

★

मुद्रक—

सेठ बिहारीलाल झुन्झुनवाला
दी सेंट्रल इंडिया प्रिंटिंग वर्क्स, सीताबर्डी, नागपुर

संवत् २००१ मूल्य—१।)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

acc: no: 14459
Rs 1-9-0
257

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

समिति का प्रथम प्रकाशन

" हिन्दी साहित्य की वर्तमान विचार-धारा "

[लेखक-श्रीरामशर्मा, साहित्यरत्न]

मूल्य—२)

साहित्य और संस्कृति का प्रतीक खण्डवा का सुप्रसिद्ध मासिक ' आगामी कल ' लिखता है—(सितंबर ४३)

" साहित्य और राजनीति के अनिवार्य समन्वय की धारा संतुलित रखकर पुस्तक प्रकाशित की गई है। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों के लिये पुस्तक का विशेष मूल्य इसलिये है कि प्रस्तुत पुस्तक को ध्यान से पढ जाने पर हिन्दी साहित्य के आधुनिक विकास की व्यवस्था स्पष्ट हो जाती है। "

प्रगति का क्रान्तिदूत कविवर श्री. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' एम, ए.—

" हिन्दी साहित्य के नवनिर्माण में आज जो प्रवृत्तियाँ बाधक हो रही हैं उनकी ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करने की आपने सफल चेष्टाएँ की है। आपका दृष्टिकोण स्वस्थ और प्रगतिगामी है। भाषा परिमार्जित और शैली निर्दोष है। विश्वविद्यालयों के हिन्दी छात्रों के लिये पुस्तक अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी। साथ ही हिन्दी के उगते आलोचक भी उसमें पथ निर्देश पा सकेंगे। "

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्तिनिकेतन से हिन्दी और संस्कृत विभाग के अध्यक्ष साहित्याचार्य पं. हजारीप्रसादजी द्विवेदी लिखते हैं—

" आपकी पुस्तक मैं पढ गया हूँ। निबन्ध मुझे बहुत रुचे। "

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कलाकार की कलम से

माँ भारती के उन सपूतों के सामने हम सिर झुकाते हैं जिन्होंने अपनी कलम को कागज पर रखने के पहिले कफ़न बाँधलिया है और जानबूझकर वह पेशा अपनाया है जिसमें घाटे के सिवा मुनाफ़े का नाम नहीं ।

प्रस्तुत पुस्तक में पाठकों को कसकती कहानियाँ, भावपूर्ण झाँकियां, निबन्ध और सच्चे संस्मरण सब एक जगह मिलेंगे जिनमें समाज का कटुसत्य बोल उठता है ।

पुस्तक की प्रत्येक रचना लेखक के जीवन की अमर घडियों में निस्सृत हुई है अतः भाषा की कोमलता या कठोरता के लिये वे परिस्थितियाँ ही अधिक कारणीभूत हैं जिनमें लेखक के विचार पहाडी झरने की तरह बेरोकटोक निकल पडे। लेखक का उद्देश्य कटु आलोचना करना नहीं, वरन् अनायासही उसकी कलम से कहीं कहीं निर्मम सत्य प्रकट हो गया है किन्तु कोई यह न समझे कि लेखक के हृदय में उनके प्रति प्रेम नहीं जिन्हें वह हमेशाप्यार करते आया है। वास्तविक वस्तुस्थिति के कलात्मक प्रकटीकरण को भी यदि कोई "गंदा प्रचार" समझे तो हम इसे भगवान का वरदान समझेंगे ।

इस पुस्तक के पृष्ठ जब लिखे जारहे थे तब लेखक जीवन का वैभव खो रहा था। अब पुस्तक समाप्त हो रही है और लेखक साहित्यिक शान्ति प्राप्त कर रहा है ।

'कला' रागात्मक वृत्तियों के आवेग की अभिव्यक्ति का सुन्दर साधन है इसलिये स्पष्टतः वह मानव सृष्टि है। उसमें ईश्वरीय–पूर्णता और पवित्रता ढूँढने की आवश्यकता नहीं। मनुष्य के लिये किसी कलाकार की रचना ईश्वरी-सृष्टि की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान और मनोरंजक होती है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

साहित्यिक की सफलता इस संतुलन के रखने में है कि वह मनुष्य को 'मानव' बनाये रखे। राक्षस बनकर वह पृथ्वी का पीडक न बने और देवता बनकर वह ऐसा अद्भुत न बनजाय कि धरती के लोग उसे समझ न सकें।

इस पुस्तक के प्रकाशन में 'समिति' के प्रधानमंत्री श्रीरामजी गुप्ता की प्रेरणा और बाबू रामनिरंजन खण्डेलवाल का आर्थिक सहयोग है। वर्धा के सुप्रसिद्ध पत्रकार पं. उमाशंकर शुक्ल यदि कागज की समस्या हल न करते तो प्रकाशन कार्य में और भी विलम्ब हो जाता। ये तीनों सज्जन 'समिति' के शुभ-चिंतक हैं अतः परस्पर के धन्यवाद की उन्हें आवश्यकता नहीं।

पुस्तक छपने के पहिले ही कुछ सज्जनों ने अगाऊ दाम देकर सैकड़ों प्रतियाँ खरीदलीं। इसे आप उनका सौजन्य समझिये या लेखक के प्रति विशेष स्नेह। यह तो स्पष्ट है कि मित्रों ने पुस्तक का स्वागत किया।

अकोला (बरार)
१ जून १९४४

श्रीराम शर्मा
(साहित्य मंत्री)
श्री विदर्भ हिन्दी साहित्यसमिति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कलाकार का सद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विषय-सूची

		पृष्ठ संख्या
१.	रमेश बाबू	१
२.	दो प्रश्न	७
३.	श्रीमती शीला	११
४.	जीवन—एक पहेली	१५
५.	चरित्रकी परिभाषा	१९
६.	प्रचारक और समालोचक	२१
७.	आजकी नारी और आलोचक	२६
८.	कहानी नहीं, कटुसत्य	२९
९.	परिवर्तन	३२
१०.	बाजारू दुनिया के दो चित्र	३५
११.	उलझन	३८
१२.	क्या स्त्रियों का स्वातंत्र्य पुरुषोंपर अवलम्बित है?	४२
१३.	जीवन के सत्य	४६
१४.	बाजार का एक चित्र	४८
१५.	छद्मयोगी	५६
१६.	हिन्दी विद्यापीठ का छात्रावास	५९
१७.	साहित्यिक का स्वप्न	६४
१८.	म्युनिसिपल चुनाव	६७
१९.	ओ पण्डित	७१
२०.	कार्य समिति की बैठक	७३
२१.	हमारा सांस्कृतिक जीवन	७६
२२.	शिक्षक और समाज	७८

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

२३. बेचैनी के क्षणों में	...	....	८१
२४. प्रयाग में चार दिन	....	....	८४
२५. व्यापार में सचाई	....	....	८९
२६. न्याय और कानून	....	....	९२
२७. मैं क्या समझूँ	....	....	९३
२८. चक्कर क्लब	....	....	९४
२९. वर्धा–एक पुण्यभूमि	....	....	९७
३०. एकाकी क्षणों में !!	....	....	१००
३१. मजदूर का कमरा	....	....	१०२
३२. कलकत्ता के अनुभव	....	....	१०६
३३. यह कैसी मनोवृत्ति ?	....	....	१०९
३४. प्रश्न चिन्ह घूम रहा है ?	....	....	११२
३४. रेल के डिब्बे में	....	....	११४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रमेश बाबू

" कह तो दिया तुमसे कि कह दो, अपने बगीचे में कच्चे नारियल नहीं हैं। " अलगनपरी ने जब ये शब्द अपने नौकर रामू से कहे तो उसके माथे में त्योड़ियां पड़गई थीं, नीचे रमेश बाबू सुन रहे थे। रामू उनको आकर जबाब देता, उससे पहिले ही वे बंगले के बाहर हो चुके थे।

अलगनपरी कृष्णपुर जागीर की स्वामिनी है। एक दिन रमेश बाबू के किसी मित्र के यहां पूजा में कच्चे नारियल की जरूरत हो गई। वे जानते थे कि अलगनपरी के बगीचेमें नारियल के बहुत से पेड़ हैं और उनमें नारियल लगे हुये उन्होंने प्रत्यक्ष देखे भी थे इसीलिये वे वहां पहुंचे थे। किन्तु जब नौकर ने नारियल के लिये इनकार किया तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ। वे सोचने लगे कि एक नारियल की बात ही क्या! फिर मैं मांगने भी इनके यहां कब कब आता हूं। यह कैसे हो सकता है कि एक सुसंस्कृत महिला मामूली चीज के लिये 'ना' कहदे। लेकिन बात उलटी ही थी। अलगनपरी के कहने से ही नौकर ने इनकार किया था। जब यह बात रमेश बाबू को मालूम हुई तो उनके दिलपर इसका बहुत असर हुआ।

रमेश बाबू एक बहुत बडे जमींदार के बडे बेटे थे। बहुत बडा उनका लेन देन था। बडी बडी कोठियां। सैकड़ों नौकर। घोड़ा, गाडी, फिटन सभी कुछ। किसी बात की कमी नहीं थी। चार पांच भाई थे। बहुत बडा उनका परिवार था। किन्तु रमेश बाबू को राष्ट्रीय आन्दोलन की हवा लग चुकी थी। उन दिनों पंजाब में लाला लाजपतराय के भाषणों का बडाजोर था। रमेश पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भी उनका असर हुआ। उसके पिता सोचा करते कि सरकार की ओर से हमपर कभी आफत न आजाय। कमिश्नर और कलेक्टर साहेब कई बार रमेशबाबू के पितासे शिकायत कर चुके थे कि सरकार की आंखों में आपकी बडी इज्जत है और हमेशा ही आप सरकार के खैरख्वाह रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि रमेशबाबू कोई उपद्रव कर बैठे कि जिसमे सरकार को आपमें शंका हो जाय।

रमेश ने जब देखा कि घरके सभी लोग मेरे स्वतंत्र विचारों में बाधा डालते हैं तब वह घरसे निकलकर घूमते घामते सन् २० में कृष्णपुर आगया। लोग समझते थे कि होगा कोई योंही। दुनिया क्या जाने उसके अन्तर की पीड़ा को, कौन समझता कि अपनी लाखों की जमींदारी छोडकर वह भिखारी की तरह घरसे निकल पड़ा है। उसकी बात चीत की सफाई, हृदय की उदारता मित्रों के लिये अपने को संकट में डालने की मनोवृत्ति, रहन सहन के ढंग और स्पष्टवादिता के कारण यह अवश्य जाहिर होता था कि उसका सम्बन्ध जरूर किसी बडे खानदान से है किन्तु इस पूंजीवाद के युग में तो उसी की कदर होती है जिसके पास दुनिया प्रत्यक्ष में बहुत अधिक रुपया देखती है।

सुनते हैं कि अन्तिम मुगलबादशाह के वजीरजादों को अपने दुर्दिन में बैलगाडी हांककर पेट पालना पड़ा था। इसी मौके की एक घटना है कि किसी नगर कोतवाल (सिटी इन्सपेक्टर) ने उसे मामूली गाडीवान समझकर कुछ गालियां देदी कि जिनके लिये गुलाम भारत की पुलिस कुप्रसिद्ध है। फिर क्या था। उस गाडीवान ने साहेब को इतने हंटर मारे कि वे बेहोश हो गये। मुकदमा चला। सहृदय न्यायाधीश ने गाडीवान को यह कहकर छोड दिया कि मुजरिम उस खानदान से सम्बन्ध रखता है कि जिसके सामने बडे बडे आला अफसर किसी दिन सिर झुकाते थे। ऐसे आदमी के साथ पुलिस अफसर को तमीज के साथ पेश आना चाहिये था।

उपर्युक्त घटना का उल्लेख हम इसलिये कर गये कि नारियल वाली घटना भी कुछ ऐसा ही है कि जिसने रमेशबाबू को अन्तरात्मा में क्रान्ति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मचादी। अभीतक उनकी आंखों में धन की अपेक्षा मनुष्यता की अधिक इज्जत थी किन्तु धनवानों का मुकाबला करने के लिये तो धन की ही आवश्यकता होती है अतः वह राष्ट्रीय कार्यों के साथ साथ व्यापार भी करने लगे।

सन २४ की बात। अचानक व्यापार में घाटा लग गया। रमेश के घरवालों को पता चला तो तुरन्त उन्होंने रुपया भेज दिया। वे चाहते थे कि घर रहकर अपनी जमींदारी संभाले क्योंकि वह अपने बाप का बडा बेटा था अतः उसे अधिकार भी अधिक था। वैसे वह था भी प्रतिभाशाली। उसकी पढाई विशेष नहीं हुई थी क्योंकि वह लाडला था। किन्तु उसने सत्संगति से संसार का गहरा अनुभव प्राप्त किया था। साधु संतों की सेवा में भी उसे बडा आनन्द आता था हमेशा उसकी इच्छा रहती थी कि अपने दोस्तों की वह खूब मदत करे और देश तथा समाज की सेवा में मरमिटे।

कुछ दिनों के लिये वह देश चलागया लेकिन उसका दिल वहां न लगा। सन २५ में लौटकर आया और २६ में छः माह के लिये कलकत्ता चला गया। इसके बाद फिर वह कृष्णपुर आ गया। कृष्णपुर से २६ मील दूर हरीपुर में उसने व्यापार करना शुरु किया किन्तु रमेश का जीवन तो सेवा कार्य के लिये बना-था। मजबूर होकर उसे व्यापार करना पडता था। वह कांग्रेस में बराबर कार्य करता रहा पर किसी पद को प्राप्त करने की उसने कभी इच्छा नहीं की। यदि उसके मित्र उससे कहते भी तो वह यह कहकर टालदेता कि भाई मुझे तो देश का एक सिपाही समझो। नेतृत्व करनेकी मेरी इच्छा नही है। पदाधिकारी बनकर हुकुम चलाना होता तो अपने घर की जमींदारी छोडकर यह सब कष्ट क्यों सहता। वास्तव में वह था भी ऐसा ही। उसने कभी पैसे की परवाह नहीं की। यदि उसके हाथ में पैसा आता भी तो वह पानी की तरह अपने दोस्तों के लिये बहादेता। वह हमेशा कहता कि संसार में 'मनुष्यता' का महत्व अधिक है। 'पैसा' तो जड पदार्थ है और इसके क्षणिक मोह में मनुष्य अन्धा हो जाता है। इन्हीं सब बातों से रमेश के जीवन में ऐसे भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दिन आ गये कि वह पैसे पैसे के लिये मोहताज हो गया । ये भी दिन देखने थे। वह हमेशा हंसकर कहता कि मैंने सुख के दिन बहुत देखे हैं तो अब ऐसे भी दिन देखने चाहिये।

सन ३२ की बात है । सेठ चन्द्रभाल चमडिया। कृष्णपुर के प्रसिद्ध व्यापारी। लोग दिखावे के देशसेवक भी हैं। मौकेपर मदत भी करते हैं कांग्रेस को। सेठ साहेब उनलोगों में से हैं जो देशकी जनता से दस लाख शोषण करके दस हजार का दान देकर देश भक्तों में नाम लिखाते हैं।

गांधीजी का नमक सत्याग्रह चला था। सेठ साहेबने देखा कि रमेश बडा उत्साही आदमी है। इसी को क्यों न भेजा जाय। अतः नमक की कढाई के पास सबसे पहिले रमेश का ही नंबर आया। वहां पुलिस पहिले सेही तैयार थी। वैसे भी रमेश विदेशी कपडों की 'पिकेटिंग' करवाने में सबसे आगे रहता था। कई व्यापारियों के विदेशी कपडों को उसने सील लगादी थी इसलिये वे चाहते भी थे कि किसी तरह रमेश जेल चला जाय तो अच्छा रहे। सेठ चन्द्रभाल की कृपा से वह दिन भी आगया और रमेश चार माह के लिये जेल भेज दिया गया।

जेल से छूटके रमेश आया तो उसकी आर्थिक हालत बहुत खराब थी। वह सेठ चन्द्रभाल को बहुत अच्छा आदमी समझता था। उसे पता नहीं था कि सेठ साहेब में पूंजीवाद की बदबू भरी है। इसका पता उसे तब चला जब उसने सेठ साहेब से अपने खर्च के लिये उन्हीं के कई बार आग्रह करनेपर अपने जीवन में पहिलीबार ३० रु. मांगे। सेठ साहेबने उसे १० रु. बताये तो रमेश की आँखें खुल गईं। चलचित्र की तरह उसकी आंखों के सामने यौवनकी कई घटनाएँ जलदी जलदी घूमगईं तथा इस दुनियाका एक नया कटु अनुभव उसे और हुआ।

जैसे जैसे समय बीतता गया रमेश अपने जीवन के प्रति सजग और विचारों में दृढ होता गया। पैसे का मद उसकी आंखों में निस्सार हो चुका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

था। सेवा पथ पर चलना ही उसे शान्तिप्रद मालूम हुआ। लाख समझाने पर भी वह उस साधु की मिसाल पेश करता जो पानी में पडे हुये बिच्छु को बाहेर निकालने में बारबार काटे जाने पर भी अपने प्रयत्न से हटना नहीं चाहता था। रमेश कहता कि मै क्या करूं, मेरा स्वभाव ही ऐसा है।

सन ४२ का कांग्रेस आन्दोलन। नेतालोग नजरबन्द होने लगे। प्रांत के नेता माननीय सरमण्डल रमेश बाबू की कार्यशक्ति को खूब जानते थे। उनकी इच्छा थी कि रमेश बाहर रहकर देश की अधिक भलाई कर सकेगा। साधारण लोग इस रहस्य को नहीं समझ सकते थे। वे आपस में चर्चा करते कि क्या हो गया इस रमेश को। यह तो बडा देशभक्त बना घूमता था। अब जेल न जाकर बगलें क्यों झांकता है। इस तरह की बातें सुनकर रमेश के मित्र मास्टर अखिलेश को खूब हंसी आती और साथ हो घृणा का भाव भी पैदा होता ऐसे लोगों के लिये क्यों कि इन चर्चा करने वाले चापलूसों में कुछ ऐसे भी थे जो कांग्रस के नामपर बडे बडे पदों पर बैठे कुर्सी तोडा करते थे परन्तु परीक्षा के समय खुद मुंह छिपाते थे और रमेश में दोष निकालते थे।

अखिलेश के न जाने कितने धनपति शिष्य हैं किन्तु उसे तो फाकेपति रहने में ही मजा आता है। वह जानता है कि उस्ताद की कुर्सी तो हमेशा खाली रहेगी। मैं जहां जाऊंगा वहां शिक्षक की जरूरत तो होगीही। फिर हाय हाय करने से क्या लाभ इसीलिये वे पहिले दर्जे के लापरवाह भी थे। यहांतक कि उनके खाने पीने की फिक्र भी रमेश बाबू को करनी पडती थी। कभी कभी तो रात के १ बजे वे दोनों मिलकर खाने बैठते तो लोग कहते—अजीब आदमी हैं भई ये लोग। इन्हें खानेकी भी समयपर फुरसत नहीं मिलती। धीरे धीरे लोगों को शंका भी होने लगी कि इनकी दोस्ती भी खूब है। जब देखो तब साथ साथ। बात यहाँतक पहुँची कि कुछ लोग तो व्यर्थ ही दोनों से जलने लगे। ऐसे ही लोगों के लिये बाबा तुलसीदास कह गये—"बिन काज दाहिने बांये।" किन्तु सभी जानते थे कि ये दोनों बिगडे दिमाग धुन के बडे पक्के हैं इसलिये सामने आकर मुकाबला करने में लोग भी डरते थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रमेश की उम्र करीब ५० के पास पहुंच चुकी है। व्यापार का शौक तो उसे पहलेसेही था। एक बार सरकी के सौदे में उसे १ लाख २६ हजार का फायदा हुआ। ईश्वर की इच्छा थी। पासा चित पडा। लगातार उन्नति होती गई। अब तो बडे बडे धनपति भी रमेश से मिलने में अपनी शान समझने लगे। उसकी देशसेवाकी हर जगह प्रशंसा होने लगी। उसके कुटुम्बी भी उसकी व्यापार कुशलता पर फूले नहीं समाते। सबसे बडी बात तो यह है कि कृष्णपुर जागीर की स्वामिनी अलगनपरी जिसने उसे तुच्छ समझकर नारियल देनेसे इनकार कर दिया था वह भी अबतो अपने लडके की शादी तथा अन्य कार्यों में उसे बुलाकर सलाह लेने लगीं। उसके बच्चे भी अब रमेश को बाकायदा प्रणाम करते हैं।

कुछ ऐसा जान पडता है कि देशभक्ति भी धनवानों को ही शोभा देती है! फाकापतियों को इस 'पूंजीवादी प्रजातंत्र' में 'त्याग' का पाखण्ड न रचकर कोई दूसरा काम करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दो प्रश्न ?

"हम आपका काम कर देंगे डाक्टर साहेब" मिनिस्टरने विश्वास दिलाते हुये कहा। कुछ दिन के बाद डाक्टर लहनासिंह फिर मिनिस्टर से मिलने गये।

"श्रीमान ! आपने मेरे 'केस' के सम्बन्ध मे कुछ नही सोचा, आपने तो कहा था......।" मिनिस्टर बीच में ही बात काटकर बोल उठे-"हम आपके केस मे कुछ नहीं कर सकते। आपने अधिकारियों का अपमान किया है।"

"क्या सच और साफ बोलना ही अधिकारियां का अपमान है ? आपही तो कहा करते हैं कि निर्भीक रहो और साफ बोलो। बस, मैंने भी यही किया और यही मेरा कसूर है।"

"तो अब आप जा सकते हैं। मैं आपके लिये कुछ नहीं कर सकता।"

"मैं आपसे कुछ निवेदन कर सकता हूं श्रीमान ?"-डाक्टर ने कुछ गम्भीर होकर कहा।

बडे शौक से।"

"पब्लिक स्टेज पर जब आप खडे होकर बोलते हैं तो जनता को क्यों झूठा विश्वास दिलाते हैं कि हम आपके लिये यह करेंगे वह करेंगे ? आप लोग आराम से रहते हैं इसलिये हमारी तकलीफ नहीं समझ सकते। शायद इसीलिये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राष्ट्रीय जंग के मौके पर आप सोच रहे हैं कि अबकी बार 'सत्याग्रह' छिड़ने पर जनता आपका साथ न देगी क्योंकि आप लोग भी जानते हैं कि हमने किसानों और मजदूरों को विश्वास तो खूब दिलाया और उसके लिये किया कुछ भी नहीं। क्यों यही बात है ना? डाक्टर साहिब आवेश में कह गये।

"मैं आपकी कोई बात नहीं सुनना चाहता। कृपा करके आप यहां से चले जाइये।" डॉक्टर ने एक बार कड़ी निगाह से मिनिस्टर की ओर देखा और बिना कुछ बोले वहां से चल दिये।

डॉ० लहनासिंह जिला कौंसिल में सर्विस करते थे। किसी खास उलझन के कारण उनका कुछ रुपया जिला कौंसिल से लेना रह गया था। इसके लिये उन्होंने बड़ी उठापटक की। सब ओर से निराश होने पर डॉक्टर साहेब 'मिनिस्टर' से मिले थे। वहां जो कुछ बातें हुईं, पाठकों ने सुन ली हैं। मिलिटरी में रहने के कारण डाक्टर साहेब 'डिसिप्लिन' के कायल थे पर खरी सुनाने में वे एक ही थे। पंजाबियों को निर्भीकता के उपदेश की जरूरत भी जरा कम ही रहती है। अपने आफिसरों के सामने भी डाक्टर साहेब कटु सत्य छिपाना नहीं जानते थे। शायद 'सत्य' की परिभाषा को गहराई से सोचने की उन्हें कभी फुरसत ही नहीं मिली थी। यही कारण था कि वे जहां भी जाते असफल रहते। एक दिन घूमते फिरते मेरे कमरे में आ पहुँचे। उचित अभिवादन के बाद इधर उधर की कुछ बातें हुई। फिर धीरे से पूछा—"दिनेश बाबू, कांग्रेस ने मन्त्री पद स्वीकार करके अच्छा किया है?

"बुरा भी क्या किया है?" मैंने सहज भाव से उलटकर पूछ लिया।

डाक्टर साहेब अपनी आदत के अनुसार कस कस के सुनाने लगे—"क्या अच्छा किया? मजदूरों और किसानों की सहानुभूति खोदी। अपने सिद्धाँत के विरुद्ध उनपर गोलियां चलाईं और लाठी चार्ज किया। भोली जनता ने त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

समझ लिया कि ये लोग सरकार से मिल गये। सरकार भी इससे अधिक और क्या करती ? जो वह करती थी, वह इन्होंने भी किया।"

"अनुशासन रखने के लिये 'मिनिस्ट्री' को यह सब करना पडा। हमारे मन्त्री अधिकारों से प्रेम नहीं करते। 'पद' का उन्हें कोई लोभ नहीं।"—मैंने उन्हें शान्ति से समझाने की कोशिश की।

" वाह बाबू, यह खूब कही। 'पद' के लिये चुनाव के मौके पर चीलोंको तरह आपने उन्हें मँडराते नहीं देखा ? सेवा से हटकर क्या वे स्वार्थ के चक्कर मे नहीं फसे ?"——डाक्टर ने ये शब्द इस तरह कह दिये कि जैसे कोई ' अकाट्य ' बात कह दी हो।

हमको अपने आदमियोंपर विश्वास रखना चाहिये अन्यथा उनकी कठिनाइयां बढ जाती हैं। " ———मैंने कुछ भी जमाकर कह दिया।

डाक्टर साहेब अपनी डाढी को ठीक करते हुए बोलने लगे——— ' क्या आप इस बात से इनकार कर सकते हैं कि हमारे राजनैतिक क्षेत्र में ' अधिनायक तंत्रवादी ' प्रवृत्तियां काम नहीं कर रही हैं। ' प्रजातंत्रवाद' के मूल सिद्धांतों में ' विचार स्वाधीनता ' सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है। फिर हमारे नेताओं की मनोवृत्ति की आलोचना करनेवाले विद्रोही क्यों समझे जाते हैं ?" मैं इस प्रश्नपर कुछ सोच ही रहा था कि वे फिर बोलने लगे—

" मंत्रियों ने इधर उधर पार्टियां खाने और मानपत्र लेने के सिवा और किया ही क्या ? क्या जारशाही को खतम करने के पहिले, महात्मा लेनिन भी इस तरह पार्टियां उडाता था ? राणा प्रताप, शिवाजी और गुरू तेगबहादुर ने कर्तव्य पालन में कितनी पार्टियां खाईं ? हजारों भूखों की रोटी का खर्च इनकी एक दिन की शानदार पार्टी में क्या नहीं उड जाता ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बात को रोकने के लिये मजाक के साथ हँसकर मैने पूछा 'आखिर आप चाहते क्या है?"

'चाहता क्या हूँ अजी इस अन्धेर की कोई हद है" कहते हुए उन्होंने अपने 'केस' का सारा हाल कह सुनाया। मैंने भी उनके साथ सहानुभूति प्रकट की। वे खुश हुए। पानदान से सुपारी खाते हुए और कष्ट के लिये क्षमा प्रार्थना करते हुये उन्होंने बिदा ली लेकिन मेरे सामने दो प्रश्न छोडगये—एक मंत्रित्त्व ग्रहण और दूसरा नेताओं की मनोवृत्ति।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

श्रीमती शीला

" आप घूमने चलते हैं क्या ? "

वह मुस्कराते हुये पूछ रही थी।

" मैं नहीं चलता, मुझे फ़ुरसत नहीं है।" कहकर मास्टर निखिलेश-चन्द्र वर्मा अपने कमरे के भीतर चले गये। श्रीमती शीला देवी की मोटर अपने बँगले को छोडकर 'कम्पाउड' के बाहिर हुई। दो तीन बार 'हार्न' बजा और मोटर हवा से बातें करने लगी।

....

" आप भोजन कर चुके क्या ? " उसने हमेशा की 'टोन' में पूछा।

'हाँ, मैं कर चुका; आप करिये।" मास्टर साहेब ने गंभीरता से उत्तर दिया और धीरे-धीरे आगे बढ गये।

श्रीमती शीला देवी एक धनवान महिला हैं। उम्र के लिहाज से कह सकते हैं कि चालीस में शायद पांच-छ कम हो। अपने स्वाथ्य और सौन्दर्य को बनाये रखने के लिये वह सतत साधना करती हैं। सुधारक है वह, इसलिये उसके सामाजिक विचार बडे ही क्रांतिकारी हैं। घर में उसके विचारोंका सहसा कोई विरोध नहीं कर सकता। स्वभाव से वह गंभीर है, पर जब धीरे धीरे हँसती है तब उसकी आंखे सजल हो जाती है और ओंठ हिलने लगते है। उस समय ऐसा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मालूम पड़ता है मानों उसकी भोली भाली आंखे बिखरती हुई हँसी को समेट कर रखना चाहती हो। अमीर है वह, आलस्य उसके पास नहीं है। उसके जीवन में मस्ती नहीं, पर एक प्यास जरूर है। सुखी है वह, लेकिन एकान्त में वह बेचैन सी हो जाती है। कभी कभी दुनियां की आंखें बचाकर वह हृदयभार हलका करने के लिये आंसू भी गिरा देती है। यदि कोई देखकर उससे पूछने की कोशिस करता है तो उसकी सलज मूक भाषा कह देती है—ऐसा क्यों होता है, मैं नहीं जानती। घर के लोग समझ लेते हैं कि शायद तबियत ठीक न हो या किसी बच्चे की याद आगई होगी। उसे कोई ज्यादा तंग नहीं करता।

मास्टर निखिलेश इन्हीं शीला के 'ट्यूटर' हैं। भावुक हैं वे, अतः सभ्यता की छोटी सी बात का भी उनपर असर हो जाता है। चिन्तन शील हैं वे, अतः उन्हें बहस करने और व्यर्थ बडबड की आदत नहीं है। गम्भीरता और खुश मिजाजी का अद्‌भुत संमिश्रण है उनमें। उनकी बातों में जादू का असर है और आंखों में है एक मस्ती भरा आकर्षण। न जाने क्यों एक बार उनके मिल जाने के बाद उनके अभाव में हृदय बेचैन होकर रो उठता है। उनके स्वभाव की विशेषता है यह।

श्रीमती शीला में बनियापन अधिक था, जैसा कि अधिकतर अमीरों में पाया जाता है। इसीलिये मास्टर निखिलेश की तबियत उनके यहां कुछ घबडाई हुई सी रहा करती थी—हमेशा सुस्त और बेचैनी लिये हुये। शीला की ओर से उनकी सारी व्यवस्था बहुत अच्छी थी तब भी वे उसके प्रश्नों का उत्तर कुछ इस ढंग से देते कि उनके शब्दों का रुखापन सहृदय आदमी से नहीं छिप सकता था। कभी कभी तो वे बुरी तरह से डांट भी देते—अपने कमरे में बैठकर सोचते, खूब सोचते। कभी कभी तो घण्टों बीत जाते। न जाने क्यासोचते। लोग समझते, शायद कोई लेख लिख रहे होंगे। एक दिन मुझसे कहने लगे-'जिसके हृदय में उदारता नहीं, उससे सत्य ओर सरल व्यवहार की क्या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आशा ? प्रेम और पवित्रता कैसी ? जहां जरासा भी स्वार्थ सामने आया कि मनुष्य सभ्यता और शिष्टाचार भी भूल जाता है। शील और सौजन्य को भी ठुकरा देता हैं।" फिर सहसा चुप हो गये। उनके मुंह से एक अस्फुटित ध्वनि सी निकली—कहाँ फँस गया !

"जीवन में मुझे किसीने इतना नहीं डांटा, जितना आप डाँटते हैं। दूसरा यदि कोई इस तरह करता तो मैं नाराज हो जाती।" श्रीमती शीला ने मीठी मुस्कराहट से एक खास ढंग के साथ कहा। "अच्छा होता, यदि तुम नाराज हो जाती। मैं एक आफत से बचता।" मास्टर साहेब ने रुखाई से उत्तर दिया। "मुझे घर में कोई नहीं डांटता, इसलिये एक ऐसे आदमी की जरूरत है जो मुझे समय समय पर डाँटता रहे। शीलादेवी ने कुछ शरमाते हुए कहा।

मास्टर साहेब मौन थे। न जाने क्या सोच रहे थे। इधर श्रीमती शीला ने अपनी फलों की तश्तरी से कुछ फल मास्टर साहेब की तश्तरी में रख दिये और अपने दूध का 'कप' भी उनके 'कप' से बदल लिया। सावधान होकर मास्टर साहेब ने पूछा—"यह क्या कर रही हो, शीला ?" आपके 'कप' में दूध कम था और मुझे भूख भी कम है इसलिये; क्यों शुरू करिये न !" श्रीमती शीला ने नारी सुलभ सरलता से उत्तर दिया। मास्टर साहेब ने अपनी कम बोलने की आदत के अनुसार कुछ उत्तर न देकर खाना शुरू कर दिया। लेकिन उनकी हमेशा अर्ध स्फुटित पैनी आंखें एकबार शीलादेवी के मुख पर जा टिकीं और फिर वे कुछ सोचने में निमग्न हो गये। शायद सोचते रहे हों कि—पत्थर के नीचे भी गीलापन रह सकता है।

मास्टर निखिलेशचन्द्र अपने कमरे में बैठे कुछ लिख रहे थे। चेहरा खुश था। पीछे से जाकर मैंने उनके कन्धों पर अपने दोनों हाथ रख दिये और पूछा—"क्या लिख रहे हो निखिल ? आज तो बड़े खुश मालूम होते हो।" मास्टर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

साहेब ने चेहरे का भाव बदलते हुए कहा—देखते नहीं, एक कहानी लिख रहा हूँ। मैंने प्यार से पूछा—"इसका नाम क्या रखेंगे ?" मास्टर साहिब अब अपने को न सँभाल सके। लिखना बन्द करके कुर्सी पर बैठे ही बैठे अपनी गर्दन पीछे की ओर उलट दी। लम्बे लम्बे बाल मेरी छाती पर शर्ट से छू रहे थे। मैंने देखा कि उनकी सजल आंखें कहानी का शीर्षक बना रही थीं—"श्रीमती शीला"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जीवन—एक पहेली

शहर की सडक के किनारे, कुछ दूर हटकर, आठ दस भिखमंगों का एक झुण्ड बैठा था। उसमें स्त्रियां ही अधिक थीं। मैंने देखा—उनमें से हरएक के सामने रोटी का एक कौर और थोडा सा साग। उस दिन शायद वे एक ही रोटी मांग कर लाये थे और आपस में बांट कर खाने की तैय्यारी में थे। मैं सोच रहा था कि इस छोटे से टुकडे से इनकी भूख कैसे बुझेगी। मैंने ध्यान से देखा—सबके चेहरे पर प्रसन्नता थी, सब मस्त थे मानों उनको अपनी स्थिति पर सन्तोष था। दिल में एक बात आई—इनका भी एक जीवन है!

पानी जोर से बरस रहा है। बस्ती के बाहर फटे पुराने कपडों के कुछ तंबू लगे हैं। उनके नीचे से पानी बह रहा है। हरएक तंबू में एक गृहस्थी बसी हुई है। अपनी जीवन-संगिनी और बच्चों के साथ पुरुष सुखी हैं। तंबू में थोडा सा जरूरी सामान। उन बेचारों की आवश्यकताएं ही क्या? इस बात से उन्हें जरूरत नहीं कि कांग्रेस क्या है। गांधी और जवाहिर क्या सोचते हैं? मैंने सोचा—चलो, यह भी एक जीवन है।

शहर का एक रद्दी सा मोहल्ला। रात के धुंधलेपन में तीन चार आदमियों का एक अड्डा। शायद सोच रहे हों कि कहां और किसपर हाथ सफा किया जाय क्योंकि आजकल बेकारी बहुत है। अकल तो सब बताते हैं पर मजदूरी कोई नहीं देता। वे तो बेचारे किसी के दरवाजे पर नौकरी मांगने जाते हैं, उपदेश लेने नहीं। फिर कोरे उपदेशों से पेट भी तो नहीं भरता। आखिर करें क्या? चोरी और डकैती का धन्धा अच्छा है! कहा भी तो है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

" बुभुक्षितं किं न करोति पापम् "। सोचा, यह भी जीवन है।

रात का समय। एक बडे भारी रईस का शानदार बंगला। बिजली की रोशनी रात को दिन में बदल रही थी। ऐशो आराम के सारे साज मौजूद थे! नाच और गाना—रागनियां अलापी जा रही थीं और, 'झम झम' की झनकार। शराब की बोतलें पडी हुईं थीं। देश की गुलामी का उन्हें कोई ख्याल नहीं। वे यहीं पर स्वर्ग समझते हैं। दिल में एक बात कोलाहल मचाने लगी—यह भी तो एक जिन्दगी है।

एक बडे आफिसर का आफिस। सात आठ क्लर्क। साहेब को सलाम बजाने में बहुत ही चतुर। तब भी डांटडपट पड ही जाती है! स्वास्थ्य चापलूसी करते करते खतम हो गया। हड्डियों के ढाँचे को स्मशान याद कर रहा है। दुर्भाग्य से कोई निकाल दिया जाता है। वह पागलों की तरह बाजार की सडकों पर भौंचक्का सा घूम रहा है मानो उसे अपनी आत्मा पर ग्लानि हो रही हो। क्या करें—यह भी तो एक जीवन है।

एक भला आदमी। सदाचारी और सात्विक। कभी किसी का बुरा न करनेवाला। बहुत कम बोलता है। लोकसेवा में उसने अपना घर बरबाद कर दिया। लेकिन न जाने क्यों दुनिया उसे भोंदू और पोंगा बसन्त समझती है। उसके चेहरे पर प्रसन्नता खेल रही है। आदर्शवादी है वह। उसे विश्वास है कि जो कुछ मैं कर रहा हूं, ठीक कर रहा हूं। संसार के दुरंगेपन की वह परवाह नहीं करता। इसलिये व्यवहार में कष्ट भी उठाना पडता है। खैर, अपनी अपनी समझही तो है। उसे शायद इसी तरह का जीवन पसन्द हो।

एक मक्कार और चलता पुरजा आदमी। उसका पेशा ही बडे आदमियों को बेवकूफ बनाना है। शहर में उसकी धाक है। उसके विरुद्ध कोई नहीं बोलता। सब लोग उससे डरते हैं। कई रईसोंपर उसका प्रभुत्व है। यथार्थवाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के नजदीक और मतलब साधने में अपने हथकण्डों के साथ अनूठा था वह। अब वह धनवान बन गया है और माला की मणियों को सरकाते हुये भजन करता है भगवान का! यह भी एक जीवन है।

एक साहित्य सेवी है। दीपक की तरह केवल जलना जानता है वह। उसे धनवानों की परवाह नहीं। गरीबों और दुखियों के साथ वह सहानुभूति रखता है। किसी से अधिक बोलता भी नहीं और न कभी किसी सोसायटी में भाग ही लेता है। आप उसे हमेशा अपने कमरे में बन्द पायेंगे। कुछ लोग उसे अच्छा और कुछ बुरा समझते हैं। कोई कहता है कि वह अध्ययनशील गंभीर विद्वान है। कुछ लोग उसे पाखण्डी और धूर्त समझते हैं। वह साहित्यसेवी भी शायद सोचता हो कि हमारा नश्वर शरीर खतम होनेपर केवल तपश्चर्या ही रह जाती हैं; मक्कारी का महत्व हमारे मरते ही कपूर की तरह उड जाता है। उसे केवल एक ही बात का ध्यान है—केवल एक ही—दीपक की तरह धीरे धीरे जलना। मैं सोच रहा हूं इसका भी एक जीवन है।

एक विधवा है। उसका सुनहला बाग उजड चुका था। चांदी की रातें हवा हो गईं। जीवन भारभूत है। मरना चाहती है, पर मौत नहीं आती। अपनी पवित्रता की रक्षा करती है। समाज उसे गिराने की कोशिश करता है। उसके चरित्र पर आक्षेप करनेवालों की संख्या अलग है। क्या करे वह बेचारी? अपनी जिन्दगी की नौका किसी तरह खेरही है। देखें, इसकी दुखभरी नौका संसार सागर के किस किनारे पर लगती है। यह भी एक जीवन है।

वह एक साधारण घर की स्त्री है। उसके पतिदेव का चरित्र ठीक नहीं। वे उसे हमेशा तकलीफ देते हैं। उसकी आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं। घर में भी प्राय: झगडा हो जाया करता है। लेकिन एकान्त में उसे देखिये—देवी जान पडती है वह। हमेशा प्रसन्न। कभी उसके चेहरे पर उदासी नहीं। देखने वालों को अचरज होता है कि गजब का दिल है उसके पास। मुझे भी

2

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ताज्जुब हुआ। एक ओर तकलीफ और दूसरी तरफ इतनी खुशमिजाजी। मैं सोच रहा था, यह भी तो एक जीवन है।

वह एक रईस महिला है। कुछ साहित्यिक शौक भी रखती है। ऐशो आराम की उसे कोई कमी नहीं। घर में उसी का राज है। उसके पतिदेव उस पर कभी अविश्वास नहीं करते। उसका घर सातों सुखों का नमूना है। भाग्य शालिनी है वह। लेकिन कोई नहीं जानता कि उसके हृदय में क्या कसक है। न जाने क्यों, एकान्त में जाकर वह गुनगुनाने लगती है— "एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूं।" मैंने देखा यह भी एक जिन्दगी है।

एक दिन अपने बन्द कमरे में बैठकर सोचने लगा कि आखिर जीवन क्या है। केवल एक ही बात ध्यान में आती है और बस एक ही—जीवन एक न सुलझने वाली पहेली है।

———

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चरित्रकी परिभाषा

उसने देखा कि सुजाता उसके पैरों पर पडी थी। उसने आंखें खोलीं तो सकपकाकर उठा और घबराकर उसके दोनों हाथ पकड लिये। सुजाताने अपना हृदय मानो आंखोंमें रखकर उसके सामने उंडेल दिया। उसने परिस्थित समझकर भी पूछनेका साहस किया—"तुम क्या चाहती हो सुजाता?" सुजाताने फिर एक बार दयनीय दृष्टिसे उसकी ओर देखा मानों सुजाताकी आलस भरी आंखें कह रही हों—"आप अब भी नहीं समझे।" मरे हुए दिलसे बीनू उठा और धीरे धीरे अपना रास्ता सुधारा।

मास्टर दीनानाथ और सुजाता थर्ड-इयर तक साथ साथ ही पढते आ रहे थे। अतः दोनोंमें काफी घनिष्टता बढती गई। आर्थिक कठिनाइयोंके कारण दीनानाथने कालेज छोडकर मास्टरी करना शुरु कर दिया। उसकी हमजोलीके मित्र उसे प्यारसे दीनू कहा करते थे। सुजाताने बी० ए० पास किया। वह रूपकी रानी थी। सौभाग्यसे या दुर्भाग्यसे कहिये, वह एक करोडपति दूज बर को व्याही गई और इस तरह वैभवकी भी रानी बनी। सुजाता स्वभावतः आजाद तबियतकी थी अतः स्वच्छन्द थी। ग्रेजुएट थी इसलिये घरके सभी लोग उसकी धाक मानते थे। वैभवकी स्वामिनी होनेके कारण उसका रूप भी द्विगुणित हो गया था। दूजबरको व्याही गयी थी इसलिये विशेष लाडली थी। वह तितलीकी तरह फुदकती, परिन्दोंकी तरह स्वच्छन्द विहार करती और शेरनीकी तरह मौके पर साहस का परिचय देती। किसी की क्या मजाल जो उसका कोई मुकाबिला कर सके।

दीनू उसी शहरमें मास्टर थे जहां सुजाता व्याही गई थी। वे दोनों एक दूसरेको खूब चाहते थे। दीनू लेखक था, सुजाता उसकी आलोचक। दोनों ने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

साहित्यिक रुचि पाई थी। उनका वर्षोंसे पलता हुआ स्नेह एक दिन वासनामय प्यारमें बदल गया जिसके परिणाम स्वरूप जो घटना हुई उसे पाठक पढ चुके हैं।

इस घटनाके बाद दिन, महीने और वर्ष आये और चले गये। स्मृतिकी नौका विस्मृति सागर में डूब सी गई। दीनूको सिनेमा देखने का शौक है। कोई भी अंटसंट नयी पिक्चर आयी कि आप उसे सिनेमा घर में पायेंगे। एक दिन खेल देखकर निकला ही था कि आसमान से उतरी हुई परीकी तरह सजी हुई एक स्त्री अपनी शानदार मोटर में बैठते २ रुकी और घूमकर बडी अदबके साथ उसने दीनूको नमस्ते किया। आसमानी जार्जेट की साडी में उसका गोरा बदन बिजलीको रोशनी में चमक उठा। दीनूने अपनी पूर्व परिचिता को पहिचानते ही कुछ सहमी हुई सभ्यता से उत्तर दिया। सुजाताने हलकी हंसी हंसते हुए पूछा—"आप मजे में तो हैं?" सरल और स्वच्छ हृदयसे अपनी आदत के अनुसार दीनूने कह दिया—"आपकी कृपा है।" आशा के विरुद्ध उसको सुननेको मिला—"मेरी कृपाकी आपको जरूरत नहीं है।" सुजाता जबतक सजग हो उठी थी। दीनू ठिठकसा गया और उसकी पुरानी स्मृतियां फिल्म की तरह आंखों के आगे घूम गईं। दीनू भी एक साहित्यिक है और दावा रखता है, उलझे हुए प्रश्नों के उत्तर देनेका। पर न जाने वह कुछ सोचता ही रहा किन्तु सुजाता ने धीरेसे पर जल्दी जल्दी कह तो दिया—"भारतीय वातावरणमें पलाहुआ व्यक्ति जब अपनी उज्ज्वलता और पवित्रता की दुहाई देता है तो इसका कारण उसके चरित्रकी दृढता नहीं वरन् उसके हृदय की कायरता है, जिसे एक प्रकारका थोदा संस्कार कह सकते हैं।" दीनूने जब अपने को संभाला तो उसके सामने सुजाता और उसकी मोटर दोनों नहीं थीं।

आज भी वे दोनों एक ही शहरमें रहते हैं पर परस्पर मिल नहीं सकते। सुजाता समझती है कि दीनूको कृपाकी जरूरत नहीं और जब दीनू मिलनेकी सोचता है तो उसके अन्तर में एक आवाज गूंज उठती है—हृदयकी पवित्रता, चरित्रकी दृढता नहीं वरन् कायरता से भरा हुआ एक संस्कार है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रचारक और समालोचक

बम्बई से कलकत्ता आनेवाली ट्रेनमें दो आदमी परस्पर बातें कर रहे हैं। एक प्रचारक है और दूसरा आलोचक। पहिले के बदनपर एक खादी का कुरता। सिरपर गांधी टोपी। उम्र करीब चालीस वर्ष। भराहुआ मांसल बदन। पूरे शरीरसे पण्डिताऊन टपक रहा है। पास में एक अस्तव्यस्त बिस्तर तथा झोला, जिसमें कुछ पुराने अखबार और बुलेटिन। दूसरा ढीली-ढाली धोती पहिने जो पैरोंको चूमना चाहती थी। शरीर पर एक फेशनेबल सुन्दर शर्ट। सिर खुला। चेहरेसे जाहिर होता था कि इस मस्तमौला को दुनियांकी कोई परवाह ही नहीं। अपनी धुनमें मस्त। दोनों व्यक्ति शायद पुराने मित्र मालूम होते थे।

प्रचारक—भाई क्या करें, कुछ समझमें नहीं आता। समाज-सुधारके लिये हम लोग कितना प्रयत्न कर रहे हैं, पर समाजकी आंखे खुलती ही नहीं।

आलोचक—मेरी तो समझमें ही नहीं आता कि सिवा आप व्याख्यान देने, इधर उधर रेलगाडी में चक्कर लगाने और सभाओंमें प्रस्ताव स्वीकृत करानेके और करते ही क्या हैं?

प्रचारक—(आश्चर्य चकित होकर) आप यह कह क्या रहे हैं! यार हम कुछ भी नहीं करते? क्या हमारे आन्दोलनोंका समाजपर कुछ भी असर नहीं पडता?

आलोचक—भाई साहेब! जो कुछ जाग्रति आप देख रहे हैं, उसका कारण आपके व्याख्यान और आन्दोलन नहीं हैं। प्रगति और विकासके अमर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बीजका समाजमें पाया जाना तो एक प्राकृतिक देन है। आप उसे सचाई और त्यागके जलसे सींचकर बढ़ा सकते हैं। झुलस तो सकते ही नहीं।

प्रचारक—(थैलेसे अखबार निकालते हुए) मैं आप की बात कुछ समझा नहीं। जरा अधिक स्पष्ट करिये।

आलोचक—(जोरसे हँसकर प्रचारकके कंधेपर हाथ रखते हुए) देखो भाई, मानव अपने अभावोंका अनुभव करता है और उसकी पूर्तिके लिये सतत् प्रयत्नशील रहता है। इसे आप मनुष्य जातिकी विकास-परम्पराके इतिहासका मूलाधार समझिये। समाज सुधार आजसे नहीं, युगयुगसे होता आ रहा है। प्रत्येक युगकी अपनी अलग अलग समस्याएं थीं और उनको सुलझानेके अपने अलग अलग तरीके।

प्रचारक—क्या आपका यह मतलब है कि किसी प्रकारका प्रचार या आन्दोलन किया ही न जाय?

आलोचक—मेरा यह अभिप्राय नहीं है। प्रचार और आन्दोलन ज़रूरी हैं किन्तु समाज-सेवाके कंटकाकीर्ण-पथपर हरएक आदमी नहीं चल सकता। बेशरमी और सेवा जिन लोगोंके लिये पर्यायवाची शब्द हैं, ऐसे आदमी सेवाके पथको कलंकित कर रहे हैं। जब सर्व साधारण जनता ऐसे आदमियोंको देखती है, तब ईमानदार समाज सेवियोंके प्रति भी उनकी सहज अश्रद्धा हो जाती है क्योंकि साधारण औसतका आदमी गहराईके साथ नहीं सोचता।

प्रचारक—मैं समझता हूँ कि तब भी इन सामाजिक आन्दोलनोंसे जनतामें जागृति तो होती ही है।

आलोचक—अवश्य, पर इसका अधिक लाभ धनवान ही उठाते हैं, गरीब नहीं। वास्तवमें इन लोगोंका सुधार कोई महत्व नहीं रखता। मोटरमें घूमनेवालि

14459

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

योंका पर्दों में होना और न होना बराबर है। अपहरणकी समस्या धनवानोंके साथ नहीं, गरीबोंकी स्त्रियोंसे ही अधिक सम्बन्ध रखती है। रोटीका सवाल गरीब विधवाके सामने भयंकर रूप धारण करता है, इसीलिये तो वह अपनी पवित्रतापर तिलांजली देनेको मजबूर हो जाती है न ? शादी और मौसरका खर्च गरीबोंके लिये जीते-जी नरकका दरवाजा खोल देता है। जातिसे बहिष्कृत होनेका डर जितना गरीबको भयभीत करता है, उतना अमीरको नहीं क्योंकि उसके पास तो 'चाँदीका जूता' किसी की छातीमें मारनेके लिये सदा तैयार रहता है। अनमेल विवाहमें गरीबोंकी मिट्टी पलीत होती है। शिक्षा की समस्या भी गरीबोंके सामने है। संसार गरीबोंसे बना है, अमीरसे नहीं। इसीलिये मैं कहता हूं कि पांच पचास अमीर घरानोंका सुधार, समाज-सुधार नहीं कहला सकता।

प्रचारक—आप ठीक फरमाते हैं, किन्तु सम्भव है कि धीरे धीरे इसका प्रभाव सर्व-साधारणमें प्रवेश कर जायगा।

आलोचक—यह बात तो सम्भव हो सकती है कि साधारण जनता और समाज-सेवियोंके अन्तरकी खाई भरती जाय। पर मैं देखता हूं कि वह बढती ही जाती है। एकबार किसी आधिदैविक कारणसे जनतामें भगदड मच रही थी। एक अमीर समाजसेवीने शानके साथ अपने बंगलेपर नौकरोंको हुकुम कर दिया कि आज जो भी आदमी अपने यहां आवे, उसके खाने-पीनेकी व्यवस्था कर दी जाय। इस समाज-सेवीकी महानुभावताका वर्णन अखबार वाले यों छापते हैं—"श्री····ने इस मौकेपर बडी उदारता प्रकट की और गरीबोंके खाने-पीनेका बहुत ही अच्छा इन्तजाम किया, अतः आप पीडित जनताकी ओरसे अनेक धन्यवादके पात्र हैं।" इन पंक्तियोंको पढकर मेरी आत्मा रो उठी, उस ढोंगी समाज-सेवीके यहां कसम खानेके लिये भी कोई गरीब भोजन करने नहीं गया था ! सेवाका तरीका तो यह है कि वह अमीर अपनी मोटर लेकर घटना-स्थलपर जाता और दीन दुखियोंकी वहीं यथाशक्ति आर्थिक मदत करता। लोक लज्जासे किसी फण्डमें १००) रुपये दे दिये तो यह सेवा नहीं कहला सकती। एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दूसरे अमीर आदमी हरिजन छात्रालयके प्रेसिडेंट हैं। अपनेको शिक्षित, सभ्य और दानी समझते हैं। समाज-सेवाके लिये हमेशा बेचैन रहते हैं। क्या करें बेचारे अपने स्वास्थ्य का भी खयाल नहीं करते! लेकिन जब हरिजनों की रसोई के लिये उनसे बर्तन मांगे गये तो उन्होंने ऐसे बर्तन दिये कि जिनमें शायद कुत्ते भी खाने में संकोच करें। अब आप बताइये कि ऐसे समाज सेवियों का जब जनता देखती है तो सहज ही सच्चे सुधारकों के प्रति उनकी अश्रद्धा हो जाती है क्योंकि जनता अन्धी नहीं है। वह देखती है कि बडे-बडे सुधारक भी उन्हीं समाज-सेवियोंको प्रसिडेंट बनाते हैं और विद्वानों की अवहेलना करते हैं, तब क्यों न गरीब जनता इन सबको एक ही पंक्तिका समझे! यही कारण है कि समाज इन सुधारकों में 'स्वार्थ' की बदबू देखता है और उनसे प्रभावित होनेकी जगह उलटी घृणा करता है।

प्रचारक—आपके विचारोंको जानकर मुझे बडी खुशी हुई है लेकिन आपसी बात तो यह है कि मनुष्य अपने स्वार्थोंको सहसा नहीं छोडता, फिर पूंजीवादियोंकी भी अपनी एक मनोवृत्ति होती है जो शायद ही बदल सके। किन्तु आप यह बात तो मानते हैं न, कि पूंजीवादियोंके सहयोगसे हमारे सुधार आन्दोलनोंकी शक्ति बढ गई है?

आलोचक—आप भ्रममें हैं। पूंजीवादी मनोवृत्ति और सेवा-भावमें छत्तीसका सम्बन्ध है। दोनोंका रास्ता एक दूसरेसे एकदम उलटा। उनके सहयोगमें स्वार्थ और उनकी सुविधा लिपटी हुई है; इससे आप इनकार नहीं कर सकते। ये जलसे तो उनके दिल बहलावके मनोरंजक साधन हैं। 'अपवाद' की बात आप छोड दीजिये।

प्रचारक—क्या आप बता सकेंगे कि आपकी दृष्टिमें सुधार कब सम्भव है?

आलोचक—मेरा अन्तिम निश्चय है कि जब सेवापथका अमीरपथिक 'धन' की अपेक्षा 'जन' का महत्व गहराईसे समझने लगेगा, तब विषमता हट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जायगी, परस्पर विश्वास और आत्मीयता बढेगी। समाज शांति और आनन्द चाहता है। जिन बातोंसे इनकी प्राप्ति में बाधा पडती है, उसीको वह ठुकरा देता है। प्रत्येक युग में समस्याएं रहती हैं और प्रलय तक रहेंगी। 'सुधार' का का कहीं अन्त न होगा। हां, अपने युगधर्मके अनुसार सामाजिक नियमोंमें क्रान्तिकारी परिवर्तन होते रहेंगे। समयके काले पर्देपर सचाई और त्यागकी भावनासे कार्य करनेवालोंका नाम सफेद अक्षरोंमें 'समाज-सेवक' के नामसे पहिचाना जायगा।

ट्रेन कलकत्तेके करीब पहुंच चुकी थी। प्रचारकजी अपना बिस्तर ठीक करने लगे। आलोचकजीने खिडकीके बाहर मुंह निकाला तो हवाकी एक तेज लहर उनके गालोंको थपथपा रही थी, मानों उनकी नई शक्तिपर उन्हें प्यार कर रही हो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आज की नारी और आलोचक

नारी—"आलोचक !"

आलोचक—(नारी की ओर रुख करके) 'हाँ कहो बहन ?"

नारी—क्यों अनमने से बैठे हो, शायद सोच रहे हो कि आलोचना का लक्ष्य किसे बनाऊँ। वर्तमान सामाजिक आंदोलन का मैं केंद्र स्थान हूँ। क्या मुझ पर आप कुछ नहीं लिख सकते ?"

आलोचक—"बहन, तुमने भी क्या बात छेड दी। मैं लिख तो सकता हूँ, पर सच समझिए, आज की नारी आलोचना की चोट खाकर तिलमिला जायगी। वर्तमान नारी का अंधकार से भरा आडंबर-पूर्ण व्यक्तित्व सत्य के प्रखर तेज को सह न सकेगा। उसका असली रूप प्रकट हो जायगा।"

नारी—"तो इसमें क्या बुरा है। आज की नारी चाहती भी तो यही है कि उसे अपनी असलियत मालूम हो।"

आलोचक—"क्षमा करना बहन' आज की नारी अपनी असलियत नहीं, मधुर शब्दों में प्रशंसा चाहती है।"

नारी—"भाई, आप यह क्या कहते हैं ? यह तो नारी पर एक खुला आक्षेप है !"

आलोचक—"न बहन, सोचो तो, यही आक्षेप नारी-जीवन की एक कसौटी भी हो सकता है ?"

नारी—"कैसे ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अलोचक—" क्या तुम नहीं देखती की आज की शिक्षित नारी पुरुष की प्रतिस्पर्धा में किसी भी प्रकार पीछे रहना नहीं चाहती ? पुरुष और स्त्री के संघर्ष का नेतृत्व क्या ऐसे ढंग से नहीं किया जा रहा है, मानों शोषक और शोषित, मजदूर और मिल-मालिक का सवाल पेश हो गया हो ?"

नारी—" तो इसमें बुरा क्या है ? इस प्रश्न को तो मैं और भी भयंकर समझती हूँ ।"

आलोचक—" मैं मानता हूँ, नारी के अधिकार छिन जाने से देश रसातल को पहुंच गया है, किंतु शिक्षित कहलानेवाली नारियाँ जो ऊपर से प्रकट करती हैं वह तेज उनके भीतर भी आज है क्या ?"

नारी—" क्यों नहीं ? हम आज पुरुषों से बिलकुल नहीं डरतीं । यदि कोई हमें जरा छू दे, तो हम उसके तडाक से चपत जड दें । समझे !"

आलोचक—"अवश्य, मैं नारी के साहस की प्रशंसा करता हूँ, किन्तु क्या उदंडता ही नारी का स्वाभिमान है ? यदि पुरुष भी तुम्हारी तरह किसी नारी के छू देने पर उसे घूँसा मार दे, तो जानती हो, उस बेचारी की क्या दशा होगी ?"

नारी—(कुछ संकोच से) "नहीं नहीं, आप ठीक नहीं समझे । मेरा मतलब तो आत्मगौरव की रक्षा से था । देखते नहीं, जब कोई स्त्री सडक से निकलती है, तो पुरुष किस तरह उसकी ओर घूरते हैं ?"

आलोचक—"मैं इसे पुरुषों की नीचता मानता हूँ, किंतु बहन, तुम भी तो सोचो कि शरीर के जिन अवयवों को ढके रखना चाहिए, उन्हें आरोग्यशास्त्र का बहाना लेकर खुला रखना क्या स्त्रियों के लिये शोभनीय है ? फिर पाउडर, स्नो, क्रीम, लिपस्टिक, हेअर-पिन, साडी-पिन, सँडल और नाखून की पॉलिश से सुसज्जित होकर चमचमाते जंपरों में उडती हुई साडी को अपनी खास अदाँ से संभालते हुए आज की नारी जब सडक से चलती है तो क्या उसकी यह इच्छा नहीं रहती कि पुरुष उसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देखकर अपने कलेजे पर हाथ रखले ? पति को प्रसन्न करने का उद्देश्य तो घर है, सडक नहीं। क्या इस निष्ठुर एवं निर्मम सत्य से तुम इनकार कर सकती हो बहन ? और, जब देश में गुलामी के कारण हाहाकार का तांडव-नृत्य ही रहा हो—बेकारी और भूख का प्रलय मच रहा हो, तब यह सब कुछ तुम अनुचित नहीं समझतीं ?"

नारी—"यह तो मैं भी मानती हूं कि आज की नारी को अपनी वेष-भूषा में सादगी और सरलता लानी चाहिए किंतु वह पुरुष से दबकर तो नहीं रह सकती।"

आलोचक—"यह कौन चाहेगा, नारी दबकर रहे। उसके दबने से तो देश का सर्वस्व दब गया है। क्या तुम इस बात को नहीं मानती कि आज की नारी का 'बाह्य' तो पुरुष पर प्रभुत्व स्थापित करना चाहती है, पर 'अंतर' चरणों में लोट रहा है ? उसकी बनावटी तेजस्विता व्याख्यानों में आंधी की तरह शक्तिमयी दिखलाई देती है, तो उसकी असली कमजोरियां शृंगारमयी बनकर पुरुष के बिना क्या एक क्षण भी रह सकती हैं ? भोलीभाली देहातिनों को पुरुष पर अधिकार दिलाने की इच्छा रखनेवाली आज की कलात्मक नारियाँ अपनी श्रमशील, अशिक्षित बहनों की अपेक्षा पुरुषोंपर क्या अधिक अवलंबित नहीं हो गई है ? क्या आज की सभ्य, शिक्षित और संस्कृत नारी भारत के नारी-समाज को समता के वरदान का दान दे सकेगी ?"

नारी—(मुस्कराते हुए) "आलोचक ! नारी तो न-जाने पुरुष को कब चपत जमाएगी, पर आपने तो अपनी आलोचना में नारी को खूब चपतें जड दीं।'

आलोचक—" मुझे क्षमा करना बहन ! तुमने ही तो यह चर्चा छेडी थी। अच्छा, अब फिर कभी।"

(दोनों दो रास्ते से चले जाते हैं)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहानी नहीं, कटु सत्य।

भट्टी के पास बैठकर हाथ सेक रहा था कि इतने में ही एक उपदेशक पण्डितजी ने आकर कहा—'आप इस सभा के प्रतिनिधि बनजाइये। एक रुपया चन्दा देना पड़ेगा। यह सभा देश में सामाजिक जागृति का कार्य करती है। इस वर्ष इसका अधिवेशन कानपुर में होगा। हां, इस 'पत्र' के ग्राहक भी आप बन जाइये। हमारी सभा की ओर से यह निकाला जाता है। कुल दो रुपयों की तो बात है।" इच्छा न रखते हुए भी मुझे कहना पडा कि 'पत्र' तो मुझे बहुत से मिल जाते हैं क्योंकि मैं उनके लिये मुफ्त लिखा करता हूं। अब रहा सवाल प्रतिनिधि बनने का सो गरीबों का यह हजारों रुपयों का चन्दा किसी पूंजीपति के सन्मान में किये गये एक दिन के जलसे का खर्च बनेगा। भाई अजीब है आपकी समाज सेवा! क्या समाज के बेकार युवकों के लिये भी आपने कोई 'स्कीम' बनाई है? पण्डितजी सकपका गये। आखिर 'सेवा भाव' ही के लिये तो निकले थे।

एक बार अपनी 'रेल-यात्रा' के समय एक ऐसे डिब्बे में जा बैठा, जहां हमारे कुछ 'छुट भैय्ये' नेता बैठे हुये थे। एक महिला किसी राजनैतिक परिषद की अध्यक्षता करने उसी ट्रेन से जा रही थी। उन 'छुट भैय्यों' के सरताज से किसी मजाकिये ने पूछ लिया—"क्यों जी, आप अध्यक्ष नहीं बने?" मठाधीश ने उत्तर दिया—"भाई मैं अध्यक्षों को बनाने वाला हूँ। ठीक तो है, आखिर यह भी तो एक सेवा है कि खुद पद के प्रलोभन से दूर रह कर दूसरों को मौका देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक बेकार खद्दर धारी गला फाडकर चिल्ला रहा था—"भाइयो ! यदि आप मुझे चुनकर देंगे तो मैं आपकी सेवा करने में किसी बात की कमी न उठा रखूंगा।" सौभाग्य से ये महाशय चुनकर आगये। कुछ ही दिनों बाद देखा गया कि उन्हें अच्छी नौकरी मिल गई और इज्जत भी। जनता जनार्दन की सेवा के उपकार के उपलक्ष में कुछ उपहार तो मिलना ही चाहिये !

म्युनिसिपालटी के एक रईस प्रेसिडेंट की बडी दूकान के सामने वाली सडक डामर की बन रही थी। कुछ दिन बाद अखबारों में पढा गया—"देश भक्त और सुप्रसिद्ध जन सेवी श्री"'जब से म्युनिसिपालटी के प्रेसिडेंट बने हैं तब से शहर की उन्नति हो रही है। कई सड़कें 'डामर रोड' बन गई हैं।" क्या करें बेचारे कुछ तो सेवा करें ही अन्यथा अगले चुनाव में स्टेज पर खडे हो कर अपनी सेवाओं का उल्लेख कैसे कर सकेंगे !

बीमा कम्पनी के एक एजण्ट ने तो सिर चाट लिया। समझ में नहीं आता कि ये लोग जनता की सेवा करने के लिये इतने बेचैन कब से बन गये। मानों उन्होंने दृढ निश्चय कर लिया है कि बिना सेवा किये वे उठेंगे ही नहीं। जहाँ जीवन का बीमा करवाया कि उनकी सेवा सफल हुई !

बेकारी से निराश होकर एक आदमी सडक पर पसरा पड़ा था। उसकी हालत से दुखी होकर बडी शिफारिस के बाद मैंने एक मिल मालिक से उसे नौकरी दिलवा दी। उसे नौकरी देते हुए सेठ साहब ने कह तो दिया—"अच्छा, आप कहते हैं तो हमें इसको नौकरी देनी ही पडेगी।" मैंने भी उन्हें धन्यवाद दिया क्योंकि मुझपर और उस गरीब पर यह उपकार किया गया था। हजारों मजदूरों के परिश्रम की कमाई अकेला ही हडप जानेवाला पतन शील मानव हृदय इसे भी गरीब जनता की सेवा समझता है !

वेश्या अपने घर के सामने पटिया नहीं लगाती पर अपने सौन्दर्य का सौदा करती है। रईस लोग तो 'पत्रों' में प्रकाशित करके साहित्यिकों के दिमाग के

Sri Pratap Singh Library Srinagar.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

साथ चांदी के टुकडों पर 'लेन-देन' करते हैं। क्या करें बेचारे, आखिर बनियापन कैसे छोड दें! वे एक दम भूल जाते हैं कि जिनके चरणों के पास बैठ कर हम साधना की भिक्षा मांगते हैं, जिनके मस्तिष्क की प्रतिभा से लाभ उठा कर समाज और देश में अपने नाम का डङ्का पीटते हैं उनके पवित्र हृदय का मूल्य हमारा स्वार्थ में सना हुआ कलंकित हृदय जन्मजन्मांतर में भी न दे सकेगा। पर उनकी मदान्ध आंखें तो इसे भी सेवा भाव ही समझती हैं क्योंकि वे बेकार साहित्यिकों को रोटी खिलाते हैं!

एक सच्चा साहित्यसेवी और ईमानदार राजनीतिज्ञ राष्ट्रीय नेताओं की पंक्ति में इसलिये पिछड गया कि उसने वर्तमान 'सेवा भाव' की परिभाषा समझने में भूलकर दी। साहित्यिक होने के नाते वह तो यही सोचता रहा—

"सेवाधर्मः परम गहनो योगिना मप्य गम्यम्"

———

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

परिवर्तन

एक सजे हुए कमरेमें पहुँचते ही मैंने देखा—प्रतिभादेवी मेरे सामने खडी थी। मुझे सोचते देर न लगी कि मैं इन्हींको पढानेके लिये बुलाया गया हूं। छूटते ही उन्होंने पूछा—क्या आपने…को भी पढाया है ? एक अपरिचित महिलाके सामने संक्षेप में 'हां' मेरा उत्तर था।

मैं थका हुआ था। सोच रहा था कि आराम करूँ। रातको दस बजे मुझे बुलाया गया। खुली गच्चीपर मैंने देखा—एक पंडितजी और प्रतिभादेवीको। पंडितजीने 'प्रसाद' जीकी एक कविता निकालकर मेरे सामने रख दी और मुझे पढानेके लिये इशारा किया। मैं समझ गया कि मेरी परीक्षा का आयोजन हो रहा है। मेरी परीक्षा का नतीजा क्या हुआ, मैं नहीं जानता लेकिन दूसरे दिनसे बराबर मैं प्रतिभा को पढाने लगा।

दिन बीतने लगे पण्डितजी बीचबीचमें आकर अपनी विद्वत्ताका प्रदर्शन कर जाते। जो नदीमें नहीं तैर सकता, वह यदि समुद्रमें तैरनेकी गप्प मारे तो यह उसका दु:साहस ही कहना चाहिये। देवीजीके भूतपूर्व मास्टर संस्कृतज्ञ तो थे किन्तु हिन्दी साहित्यकी नई विचारधारासे बिलकुल परिचित न थे अत: इस अन्धेर नगरीमें मुझे योग्यता का प्रमाण-पत्र शीघ्र ही मिल गया। मैंने भी अपनेको धन्य समझा कि चलो मेरी परीक्षा समाप्त हुई और मैं सफल हुआ।

प्रतिभादेवी एक रईस महिला थी। उन्हें जितने भी मास्टर मिले थे उनमें योग्यता कम और चापलूसी अधिक थी। व्यक्तित्व तो उनमें नाममात्रको भी नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

था। उनका एकमात्र उद्देश्य मतलब साधना था। 'मतलब' से मेरा उद्देश्य केवल 'ट्यूशन' के रुपये पकानेसे ही नहीं है वरन् और भी अप्रत्यक्षरूपसे मतलब सिद्ध किया जा सकता है। प्राय: देखा जाता है कि जो चीज ठोस होती है वह अधिक आवाज नहीं करती। भीतरसे जो थोथी रहती है वह इसलिये अधिक आवाज करनेमें पटु रहती है कि उसकी पोलका किसीको पता न चल जाय। देवीजीके भूतपूर्व मास्टर अपनी कमजोरियोंको छिपानेमें विशेष कुशल थे। स्वार्थ-साधनशील लोग अपनी अयोग्यताको इस ढंगसे छिपाये रखते हैं कि सीधासादा हृदय तो उन्हें बिलकुल नहीं पहिचान सकता। किसी रईस आदमी को संयोगसे ऐसे आदमी मिल जाते हैं तो उसकी गति नीमपर चढे हुए करेलेके समान होती है। यही हाल प्रतिभादेवीका था। ऐसे बेढंगे वातावरणमें बेचैन दिलसे मैं पढ़ाने लगा। महीने गुजरने लगे।

एक दिन पानदानसे पान उठाकर खाते हुए अपनी पूर्व आदतके अनुसार देवीजीने मुझे भी इशारा किया। अपने शिक्षकके साथ इस तरहकी बेहयाई भारतीय महिलाके लिये शर्मनाक थी। मेरे पास ऐसा हृदय नहीं था कि इस बर्तावको चुपचाप सह लेता। टुकडोंके लिये आत्माको बेचनेवाले गुलाम मनोवृत्तिके, अनुभव-हीन, विदेशी भाषाद्वारा सात वर्ष पढ़े हुए, अर्धशिक्षित, अहमन्य और अपनी झूठी विद्वत्ताका प्रदर्शन करते हुए घूमनेवाले शिक्षकोंने देवीजीका स्वभाव बिगाड रखा था। मैंने पान न खाने का बहाना बनाकर मौकेको टाल दिया।

कुछ दिन बाद मैथिलीशरणजी गुप्तकी काव्यकलापर लिखते हुए प्रतिभादेवीने 'जयद्रथवध' को सुन्दर बताया। मैंने उन्हें समझानेकी कोशिश की—जयद्रथ-वध बहुत पुरानी चीज हो गयी। तुमको साकेत, यशोधरा, द्वापर आदिकी चर्चा करनी चाहिये थी। देवीजी अपनी पूर्व आदतसे लाचार थीं। "परीक्षकोंको हमारे दृष्टि-कोणसे देखना चाहिये" उनका गर्व-भरा उत्तर था। "परीक्षकोंके पास भी अपना दिमाग होता है। मनुष्यका स्वभाव ही ऐसा है कि वह दूसरोंके दृष्टिकोणसे नहीं वरन् अपने दृष्टिकोणसे सोचता है" मेरा भाव-भरा उत्तर था। लेकिन देवीजी तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बहण्र उतर गयीं। सतर्क होकर प्यार-भरे शब्दोंमें मैंने भी उनका मुँह बन्द करनेके लिये कह दिया—जब तुम पानदानसे पान खाकर बादमें मास्टरको इशारा करती हो तब तुमने किसके दृष्टिकोणसे सोचा था प्रतिभा ? अपने या दूसरोंके ? मैंने देखा श्रीमती प्रतिभादेवीका चेहरा फक था। न जाने क्यों उनके हाथने टेबलसे उठकर उनका सिर पकड़ लिया। आँखें सजल थीं।

इधर मेरी आँखोंमें सन्तोष था कि मेरी शिष्याके पास हृदय है लेकिन उसपर पर्दा पड़ गया है। प्रतिभाकी मूक भाषा बोल रही थी कि उसे अपनी गलती पर शोक है और मेरा दिमाग सोच रहा था कि मैं इसे पढानेमें सफल हो सकूँगा।

दूसरे ही दिन श्रीमती प्रतिभाने पीनेके लिये पानी बुलाया। नौकरने दो गिलास हाजिर किये। "लीजियेगा" देवीजीका इशारा था। मुझे प्यास नहीं थी। "तुम पीओ। तुमने बुलाया है। तुम्हें प्यास लगी है, प्रतिभा" मैंने प्यारके साथ कहा। प्रतिभाने आँखें उठाकर मेरी ओर देखा। फिर बिना पानी पीये ही पढने लग गयीं। श्रीमतीजीकी आँखोंमें लिखा था—"आप पीजियेगा मेरे मास्टर। मुझे शर्मिन्दा मत करो।" मैं मजबूर था। प्यास न रहते हुए भी, प्रतिभाको पिलानेके लिये, मुझे पानी पीना पड़ा।

एक बरस बीत गया। आज मैं उनकी कुर्सी के पास जाता हूँ तो वे धीरे-धीरे भोलेपनके साथ उठ खड़ी होती हैं। मैं भी मजाकमें कहा करता हूँ—"क्यों तकलीफ करती हो, प्रतिभा।" श्रीमतीजीका चेहरा कुछ गम्भीर हो जाता है। कोई भी सहृदय उनके मुँहपर लिखे हुए इन अक्षरोंको पढ सकता है—"मेरी पिछली बातोंका तो रेकार्ड बन चुका। भविष्य तो मेरे हाथोंमें है।'

उस समय मेरे मस्तिष्कमें एक विचार उठता कि सरल, सरस और स्वच्छ हृदय हमारी मूर्खताके कारण कुटिल, हृदयहीन और मलिन भी बन सकता है। यदि "पत्थर" को हम अपनी शक्तिसे 'देवता' बना सकते हैं तो क्या कारण है कि भोले-भाले सरल हृदयको हम 'मनुष्य' नहीं बना सकते। जरूर बना सकते हैं, अन्यथा यह परिवर्तन कैसा ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बाजारू दुनिया के दो चित्र

थियेटर में एक खेल था—खूबसूरत बला। पुरुष तो बहुत बडी संख्या में जा रहे थे लेकिन स्त्रियों की तादाद भी कम नहीं थी। रंग विरंगी साडियां सडक पर लगी हुई रोशनी में चमक रही थीं। वहीं पास में नुक्कड पर एक छोटीसी पुलिया थी जिसपर दो–तीन युवक बैठे थे। जब कोई अकेली नवयुवती नीची नजर किये वहां से गुजरती तो उस पुलिया पर गुनगुनाहट शुरू होती—"इधर देख नीची नजर करने वाले"

उनका यह रवैया हमेशा का था। सौभाग्य या दुर्भाग्य से (कुछ भी कहिये) एक दिन किसी तेज दिमाग की औरत से पाला पड गया। पुलिया से गाना शुरू हुआ और इधर से चप्पल। जाते समय इन नई महाशयाजी ने उन्हें व्यंग भरे शब्दों में गाने का उपदेश भी कर दिया कि जनाब यों गाइये—
"मुहब्बत से पहिले परेशानियां हैं"

(२)

शहर का वह खुशनुमां मोहल्ला जहां की झांकी देखने के लिये सभी लोग तरसते हैं। फर्क इतना ही है कि सर्व साधारण जहां खुले आम जाते वहां अमीर तथा सफेद पोश लोग सडक की अगल बगल लोगों के झुण्ड में छिपते छिपते परिचित लोगों को आंख बचाते हुए नीची नजर के साथ धीरे धीरे रात के दूसरे पहर में कभी कभी पहुँचा करते हैं।

मेरे मित्र जनाब शिवनाथ हिन्दुस्थान के मशहूर कव्वालों में से हैं। बडी बडी तवाइफ इनका नाम सुनकर ही इन्हें अपना उस्ताद मान लेती हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रात को खा-पीकर मैं शहर में निकला था। जनाब से अचानक भेंट हो गई। कई बरसों के बाद मिले थे। बड़े खुश हुये। कुशल समाचार के बाद लगे कहने—"चलिये आज आपको गाना सुना लाऊं।" "कहाँ चलियेगा ?" मैंने उत्सुकता से पूछा।" "जहां रंगरेलियाँ उडती हैं······परियों का मजमा"—मेरे हाथ को कुछ दबाते हुये उन्होंने कहा। "मुझे तो संगीत का विशेष शौक नहीं है !" जलदी और कुछ सकपकाहट में मेरे मुँह से निकल गया। "यार ! बनो मत, साहित्यिक भी कभी संगीत के विरोधी हो सकते हैं" कहकर, मेरे उत्तर की बिना प्रतीक्षा किये ही चले वे मेरा हाथ पकड़कर घसीटते हुये। मैं लाचार था।

तवाइफों का वह कौनसा मजमा है जहां ये कौव्वाल महाशय पहुँच जायं और खुशी की लहर न बहे। मुझे वह जगह बैठने को मिली जहां पैसे देकर भी शायद अमीर लोग न बैठ सकते। फिर उस्तादजी का दोस्त जो ठहरा। योग्य सत्कार की रश्म अदा होने पर गाना शुरू हुआ। एक ने मस्ती भरी आवाज से गाया—

"जालिम तेरी निगाह ने तडपा के रख दिया"

दूसरी ने कुछ बनावटी बेचैनी के साथ अलापा—

"कब तक हमारी आह में होगा असर नहीं"

तीसरी की आवाज में वेदना थी, कसक थी और एक मीठी टीस—

"मुझे छोडकर तुम कहां जा रहे हो ?"

चौथी ने ठसक भरे पागलपन के साथ गाया—

"दीवाना बनाना है तो दीवाना बना दे"

पांचवी ने तो अपनी मदभरी आंखों से मानो शराब उँडेल दी—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"मुहब्बत की दुनियां में मशहूर कर दूँ"

इसी तरह गानों का समां बँध रहा था। शिवनाथ इस तरह सुन रहे थे मानों स्कूल के इन्सपेक्टर किसी पाठशाला का मुलाहिजा कर रहे हों किन्तु उस परियों के झुण्ड में वे बच न सके। अचानक सब की आँखें उनपर आ टिकीं और लगीं आग्रह करने।

कव्वाल जी की आवाज में गजब का मिठास था। वे गाते तो थे किसी साधारण चीज को, लेकिन नशा बरस जाता। एक मुद्दत बीत गई थी उनका गाना सुने, अतः मैंने भी कह दिया—"जरा गा दो न" फिर क्या था। दोनों घुटने टेककर अपने लखनवी ढंग से वे जमकर बैठे और बड़ी अदा के साथ उन्होंने गाया—

"दिले नादां तुझे हुआ क्या है?"

इधर इनके शब्द निकल रहे थे, उधर मैंने देखा, सुनने वालों पर जादू का सा असर होरहा था! जब कौव्वाल साहब रुके तब सहसा मेरा ध्यान अपनी 'रिस्टवाच' पर गया। समय अधिक हो गया था और उस वातावरण में इच्छा रहते हुये भी न जाने क्यों मैं बैठना नहीं चाहता था। हो सकता है कि मेरे जीवन पर समाज और सभ्यता आदि छायात्मक शक्तियां असर डाल रही हों। कुछ भी हो, अपने मित्र को मैंने चलने का इशारा किया। वे भी उठना तो नहीं चाहते थे, साथ ही मेरी इच्छा को तोड़ना भी नहीं चाहते थे। अन्त में उठ खड़े हुये और मजमें को धन्यवाद देकर विदा ली। जब हम सड़क पर आ गये तब मकान से निकली हुई आवाज कह रही थी—

"दिल लिये जाते हो मगर मुझ से बताते जाओ,
इसकी कीमत मिलेगी दाम मिलेगा कि नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उलझन

" आप मुझसे विवाह क्यों नहीं कर लेते ? "

" मैं विवाहित हूँ "

" यदि अविवाहित होते तो कर लेते ? "

" नहीं "

" क्यों ? "

" तुम वेश्या हो। "

" वेश्या से आपका क्या मतलब है ? "

मैं चकराया। मस्तक ठनकने लगा कि क्या उत्तर दूं। किसी तरह सँभलते हुये कहा—तुम समाज में पतिता समझी जाती हो।

उसकी आंखे चमक उठीं। घृणा प्रदर्शित करते हुए उसने कहा—" जो समाज स्वयं पतित है, उसेदूसरों को पतित समझने का क्या अधिकार है ? "

उसके उत्तर में सचाई थी। हमारा हिंदू समाज आज पतन की गहराई में पहुँच चुका है। सौंदर्य की जीवित मूर्तियों का सौदा यमराज के मेहमान होनेवाले बूढ़ों के साथ चाँदी के गोल टुकड़ों पर होता है! यौवन की मस्ती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

न सँभाल सकने वाला युवती का हाथ अबोध बच्चों के हाथ में सौंप दिया जाता है ! जरासी शंका होते ही कोमल कलेवर नारियां घर से निकाल दी जाती हैं । फिर भी समाज अट्टहास करता है ! इन्हीं सब बातों की ओर तो उसका इशारा था । अपने साहित्यिक ज्ञान को समेट कर मैंने फिर बोलने का साहस किया—"समाज की शक्ति अधिक है ! तुम उसका मुकाबिला नहीं कर सकती । फिर बहुमत भी तो कोई चीज है !" सोचा था कि अब की बार वह निरुत्तर हो जायगी किन्तु मेरी आशा के विरुद्ध वह फिर बोल उठी—"बहुमत क्या हमेशा ही सत्य के पक्ष में होता है ?" मुंह से "हां" निकलने ही वाला था पर ध्वनि ओठों से बाहर निकालने का साहस नहीं हुआ । क्यों कि अनुभव बताता है कि साहित्यिक, धार्मिक और राजनीतिक चुनावों के मौकों पर हम पूँजीपतियों के लिये किस तरह अपनी आत्मा बेचते हैं और बहुमत प्रायः किस तरह बनाया जाता है । इस लिये रुक गया । 'नहीं' मैं कहना नहीं चाहता था । ऐसी स्थिति में सोचा कि इससे कौन सिर खपाये । बात का पहलू बदलने की नीयत से मैंने कहा—"नलिनी, आखिर इस तरह के प्रश्न क्यों पूछ रही हो ? मतलब की बात क्यों नहीं कह देती ?" मेरे प्रश्न पर वह कुछ देर चुप रही मानों कुछ सोच रही हो, फिर वेदना मिश्रित बनावटी हास्य के साथ यों कह कर चली गई—"जाने भी दो इन बातों को । मैंने भी आप से क्या बात छेड दी !"

(२)

कालेज जीवन भी अल्हडपनसे भरा होता है । फिर यदि युवक साहित्यिक रुचि का रहा तो पढने की ओर ध्यान कम रहता है. और लेखक बनने की ओर अधिक । मुझे भी कभी फुरसत मिलती तो मैं उसी मोहल्ले में अक्सर घूमने जाता जो समाज की दृष्टि में घृणित समझा जाता है । इसलिये नहीं कि वहाँ गये बगैर मेरा कोई काम रुक जाता, पर वहाँ जाने से दिल बहलता, शहर की कई बातें मालूम हो जातीं और सब से बडी बाततो यह थी कि नीच, स्वार्थी और पतित समझे जाने 'वाले नारी हृदय' के अध्ययन का मौका मिलता । यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक ऐसी जिज्ञासी थी, जिसे मैं रोक नहीं सकता था। ऐसी स्थिति में शहर की बहुत सी वेश्याएँ मुझे पहिचानने लगी थीं। उसी में से एक नलिनी भी थी जो शिक्षित ही नहीं किसी जमाने में कुछ लिखने का भी शौक रखती थी। अतः सहज ही मुझे उससे बातें करने में अधिक मजा आता। जब कभी उस रास्ते से निकलता, तो उसके वहां कुछ देर ठहरता। धीरेधीरे परिचय बढ़ने लगा। उसे मालूम नहीं था कि मैं विवाहित हूं। मुझे उदार विचारों का नवयुवक समझ कर हंसी में उसने विवाह का प्रस्ताव मेरे सामने रख दिया था। इसके बाद में जो बातें हुई, पाठक जानते हैं।

(३)

हम लोगों ने शहर में एक शानदार बंगला किराये पर ले रखा था। आजाद तबियत के लड़के 'होस्टल' की अपेक्षा स्वतंत्र रहना अधिक पसन्द करते हैं। रात भर घूमिये पूछने वाला कोई (सुपरिंटेन्डेन्ट) नहीं। लेकिन एक दूसरी आफत यहां भी रहती है। 'होस्टल' के अधिकारियों को चकमा देना तो बांये हाथ का खेल है पर समाज और परिचितों की आंखें तो पताल में भी पहुंच जाती हैं। भला यह हो सकता है कि वेश्या के यहां कोई जाय और उसपर फबतियां न कसी जांय ? 'वेश्या' नाम ही कितना भयानक ! एक ने कहा—मि० अनिल कुमार, आपका तो पता ही नहीं रहता। दूसरे ने कहा—"यार, अकेले अकेले।" तीसरे ने कहा—"लूटो भाई मौज, तुम्हारे दिन हैं। चौथे ने कहा "हमारा हिस्सा न रक्खोगे तो ठीक न होगा" इसी तरह न जाने कितनी बातें सुनने को मिलतीं। मैं इन सब बातों पर हँस देता और कोई ध्यान नहीं देता किंतु इन सब में किरणचंद्र बड़ा ही झक्की था। मौके बे मौके उड़ाने से ही रखता था। यों कहिये कि वह किसी को भी बनाने में उस्ताद था। बी० ए० फायनल में पढता था और सब लड़कों में तगडा था, साथ ही कुछ भावुक भी।

छुट्टी का दिन था। शामका समय। किरण और मैं टहलते टहलते 'पार्क' में पहुँच गये। अचानक वहां नलिनी से भेंट हो गई। किरण के स्वभाव को मैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जानता था इसलिये मैं सोच रहा था कि यह मौका टलजाय तो अच्छा रहे। लेकिन मैंने जितनी ही घसरने की कोशिश की नलिनी ने उतनी ही मुझे रोकने की। इतना ही नहीं, वह तो पूछ बैठी-"अनिल बाबू उस दिन के 'प्रस्ताव' से आप नाराज तो नहीं हो गये ? वह तो मेरा मजाक था।"

"नहीं नहीं नाराज क्यों होता, नाराजी की उसमें बात ही क्या थी"

---मैंने हंसकर उत्तर दिया

इधर उधर की कुछ बातों के बाद नलिनी ने मीठी हंसी के साथ कहा— 'अनिल बाबू, आपको मेरे साथ देख कर आपके मित्र बहुत तंग करते होंगे।'' "नहीं, मेरे मित्र काफी उदार विचारों के हैं—मैंने किरण की ओर देखते हुये कहा। नलिनी खिल पडी और मेरा दोस्त किरण भी कुछ मुस्करा दिया। कुछ देर सब लोग मौन रहे। शांतता भंग करते हुये मैंने कहा—नलिनी, तुम्हारी उस दिन की बातों का मुझपर बहुत असर हुआ है। 'मेरी आत्म कहानी यदि सुन लेते तो शायद बेहोश हो जाते...।—नलिनी ने एक हलका श्वास छोडते हुये उत्तर दिया। कुछ कहना ही चाहता था कि नलिनी ने कहना शुरू किया—"अनिल बाबू, हिंदू नारी के सामने केवल दो ही तो मार्ग हैं—विवाह और वेश्यावृत्ति !! हिंदू समाज में स्वतंत्रता प्रिय नारी के लिये प्रायः दूसरा ही मार्ग बना है !!! इतना कहकर नलिनी वहां से चली गई और हम लोग भी अपने बंगले पर आने के लिये लौट पडे। रास्ते में दोनों चुप थे। शायद दोनों ही गम्भीरता से कुछ सोच रहे हों। बगले पर पहुँचते ही एक मित्र चिल्ला उठा—"किरण के हो भाग अच्छे हैं। उच्छृंखल प्रवृत्ति किरण आज कह उठा---"चुप रहो, मानव हृदय को समझना आसान नहीं है।" हम तीनों चुप थे, शायद तीनों ही के सामने कोई 'उलझन' हो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

क्या स्त्रियों का स्वातंत्र्य पुरुषों पर अवलम्बित है ?

एक मिल मालिक का मकान। किसी के उपलक्ष्य में पार्टी दी जा रही थी। प्रान्त के बड़े नेता, वकील, समाज सेवी तथा कुछ महिलाएँ। समय—रात्रि के करीब ९ बजे।

पात्र—

रमण देसाई—प्रान्त के एक बड़े नेता।

सेठ बिहारीलाल—सुधारक विचारों के एक मिल मालिक।

मि० कृष्णकुमार—एक वकील।

श्रीमती नलिनी—सेठ बिहारीलाल की धर्मपत्नी और समाज-सेविका।

कुमारी इन्दिरा—एक ग्रेज्युएट लड़की।

श्रीमती चपला—वकील कृष्णकुमार की विदुषी पत्नी।

रमण देसाई—मि० कृष्णकुमार, मैंने अपनी डिबेटिंग सोसायटी की अगली मीटिंग के लिये एक विषय रक्खा है—स्त्रियों का स्वातंत्र्य पुरुषों पर अवलम्बित है। क्यों ठीक है न ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मि० कृष्णकुमार—अजी, इस विषय के रखने की जरुरत ही क्या थी ? जो स्वयं सिद्ध बात है उसकी चर्चा ही क्या ?

नलिनी और चपला चकित होकर सोच रही थीं कि आज इनके होश ठिकाने नहीं हैं किन्तु बीचमें ही जब सेठ बिहारीलाल ने श्री देसाई की बात का समर्थन कर दिया तो सुप्रसिद्ध समाज-सेविका श्रीमती नलिनी के विश्वास पर पानी फिर गया। आखिर एक सेठ की धर्मपत्नी जो ठहरी। धीरे से कह दिया—हाँ, मैंने भी अपने एक भाषण में कहा था कि यदि पुरुष चाहें तो स्त्रियों को फिर से पर्दे में भेज सकते हैं।

कुमारी इन्दिरा इन बातों को ध्यान से सुन रही थीं। नये जमाने की ग्रेज्युएट लडकी थी जो कई बार वाद विवाद करने में इनाम पा चुकी थी। उसे अपनी तर्कशील प्रतिभा पर पूरा विश्वास था। जब उसने देखा कि इन पुरुषों के प्रश्न पर कुछ बहनें भी मिर्जापुरी लोटे की तरह लुढक गईं तो उसने 'लीडिंग पार्ट' अदा करना शुरू कर दिया—मि० देसाई, यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो आगामी मीटिंग के लिये मैं एक विषय सूचित करूँ।

मि० देसाई—जरूर, जरूर इन्दिरा बहिन, वाह, अवश्य सूचित करिये।

इन्दिरा—अच्छा तो यह विषय रखियेगा—पुरुषों की स्वतंत्रता स्त्रियों पर निर्भर है। (सब लोग हँस पडे)

मि० देसाई—विषय तो बडा अच्छा है बहिन, पर कुछ अजीब सा लगता है।

इन्दिरा—नई बातें तो सभी अजीब होती हैं।

मि० कृष्णकुमार—बहिन इन्दिरा, भारतीय संस्कृति के पिछले हजारों वर्षों के इतिहास से यही पता चलता है कि स्त्रियों की स्वतंत्रता पुरुषोंपर ही अवलम्बित रही है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

श्रीमती नलिनी——बहिन इन्दिरा, मुझे शक है कि यह विचारधारा कहीं भारतीय संस्कृति को खत्म न करदे। इससे तो हमारा प्राचीन जीवन ही सुखी था।

इन्दिरा——प्यारी बहिन, यदि हमारे यहाँ पूर्वकाल से अब तक नारी के व्यक्तित्व की रक्षा हुई होती तो आज यह विद्रोह की आग भड़कती ही क्यों? पुरुष की कृत्रिम प्यार भरी बातें सुनकर ही तो नारी का सरल हृदय पुरुष के चरणों में आत्म समर्पण कर देता है और फिर इस बेवकूफी के लिए जन्म भर उसे ही रोना भी पड़ता है। रही बात संस्कृति की सो वह तो कई विचारधाराओं के सम्मिलन से मथित होकर निकले हुए नवनीत से बनती है। हमारी संस्कृति नष्ट न होकर वह तो और भी पुष्ट होगी। भविष्य में भारतीय संस्कृति को लोग विश्व संस्कृति के नाम से पहिचानेंगे। वह मानव-संस्कृति होगी जिसमें सबके अधिकार सुरक्षित होंगे।

श्रीमती नलिनी—तुम ठीक कहती हो बहिन। भारतीय नारी के संस्कार ही कुछ ऐसे हो गये हैं कि अपनी शक्ति पर से विश्वास इस तरह फिसल जाता है जैसे केले के पत्ते पर से पैर।

नलिनी को प्रभावित होते देख सेठ बिहारीलाल बोले—बहिन इन्दिरा, तुम तो समाज में आग लगा दोगी। यह तो विद्रोह है—क्रान्ति, आँधी, तूफ़ान और विध्वन्स।

इन्दिरा—क्षमा करियेगा सेठ साहेब, प्राचीन बातों की दुहाई देकर स्त्री स्वाधीनता का नारा लगाना, सोने के राजसिंहासन पर बैठ मणि-रत्न-जड़ित-मुकुट धारण करके साम्यवाद की घोषणा करने के समान है।

मि० कृष्णकुमार—अच्छा हम प्राचीन संस्कृति की दुहाई नहीं देंगे पर तुम इस बात से इनकार नहीं कर सकतीं कि नारी को हमेशा पुरुष से दब कर ही रहना पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इन्दिरा—वकील साहेब, नारी की भावुकता जाग्रत करके उससे लाभ उठाने की आशा अब इस युग में छोड दीजिये। नारी अपनी इच्छा ही से पुरुष की दासी बनती है। यदि उसका हृदय क्रान्ति करदे तो पुरुष तो क्या देवता भी भौंचक्के हो जायँ।

मि० देसाई--मैं चाहता हूँ कि यह विवाद अब यहीं बन्द कर दिया जाय। मुझे खुशी है कि इस दावत में बहिन इन्दिरा के समान विदुषी उपस्थित है। पुरुषों की स्वतंत्रता स्त्रियों पर अवलम्बित है कहने से यदि पुरुष समाज अपना अपमान समझता है तो स्त्रियों की स्वतंत्रता पुरुषों पर अवलम्बित है यह बात सुनकर किसी भी स्वाभिमानिनी नारी के दिल पर चोट लगना स्वाभाविक है। मैं अपनी गलती समझ गया हूँ इसलिये यह विषय अपनी डिबेटिंग सोसायटी में अब नहीं रखूँगा।

इन्दिरा मुस्कराते हुये शरमा रही थी। नलिनी अपने दोनों हाथ इन्दिरा के गले में डाल कर उस पर झुक पडी मानों इन्दिरा की विजय पर प्यार का उपहार भेंट कर रही हो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जीवन के सत्य

[१] ' हमारे वे पुराने 'टूथ-ब्रश' तुम ले लो और उनकी जगह ये नये खीले पर लटका देना।'' पलंग पर लेटी हुई एक लक्षाधीश महिला ने अपनी नौकरानी से उपकार के शब्दों में कहा। श्रीमतीजी ने अपने तथा श्रीमानजी के लिये टूथ ब्रश बुलवाये थे, वे कुछ 'साफ्ट' थे। अतः कुछ दिन उनका उपयोग करने के बाद जब वे उन्हें पसन्द न आये तब उन्होंने 'आर्यन' हार्ड टूथ ब्रश बुलवा कर इन शब्दों में अपनी नौकरानी पर इनायत की। यह घटना जहां स्वामिनी और सेविका के भेद को स्पष्ट कर रही है, वहां अभिजात्य वर्ग के अंतस्तल की एक झांकी भी दिखा रही है।

(२) जूहू पर [बम्बई का समुद्र तट] बनी हुई झोपड़ियों को देखकर पुराने युग की नवीन बनी हुई एक सुधारक रईस महिला ने कहा—"यदि चाहें तो हमारे देहाती किसान इन झोपड़ियों से कुछ सीख सकते हैं कि सभ्य जीवन सादगी से किस तरह बिताया जाता है।"

श्रीमतीजी जूहू पर अढ़ाई सौ रुपये महिने की झोपडी में रहती थी, जहां लाइट, रेडियो, सुन्दर फर्श, टेलीफोन, मच्छरदानी के पलंग, आवश्यक फर्नीचर, पाखाना जाने के लिये कमोड और पानी के लिये आवश्यक से अधिक व्यवस्था थी। हमारा विश्वास है कि इलैक्ट्रिक लाइट की जगह धुआं उगलने वाले मिट्टी के तेल का चिराग, रेड़िओ की जगह कान फोड़ देने वाला देहाती बच्चों का कोलाहल, सुन्दर फर्श की जगह मलेरिया को आवाहन करने वाली सीड़ भरी जमीन, मच्छरदानी के पलंग की जगह फटी हुई गुदड़ी और कुर्सियों की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जगह बैठने को पत्थर तथा ईंटों का अनुभव कभी श्रीमतीजी अपने जीवन में करती तो किसानों और मजदूरों को सादगी और सभ्यता से जीवन व्यतीत करने का ढंग बताने का साहस कभी न करतीं।

[३] रविवार की चांदनी रात्रि में जूहू के तट पर घूमते हुए एक भोले-भाले रईस ने कहा—"इन कुटियों को देखकर ऋषियों के प्राचीन आश्रम की याद आ जाती है। जहां बिगडे रईस अपनी 'मधु-रजनी' मनाने जाते हैं, उन वैभव के कुटीरों में पूंजीवाद ऋषियों के आश्रम की पवित्रता देखता है!

[४] "तुम्हें मालूम होना चाहिये कि तुम अपने शिक्षक से बात कर रहे हो।' इसपर उत्तर मिला,—हम शिष्य विष्य कुछ नहीं समझते।" इस दृश्य को देखकर हमारे दिल में एक प्रश्न उपस्थित हुआ—जिसके चरणों में बैठकर इस प्रगति शील कहलाने वाले पूंजीवादी लेखक ने कलम पकडना सीखा है, अपना मतलब निकलने पर उसीके सामने मिर्जापुरी लोटा कैसे बन गया? क्या मनुष्यता भी ऐसा साहस कर सकती है?

[५] "मेरे सिर पर से वह तेल सात बार वार कर अपने नौकर बुध्दू को दे देना।" किसी निर्दोष एवं परिस्थितियों के मारे हुए मजदूर के सिर अपनी अला बला डालकर अपना लाभ सोचने वाली इस मनोवृत्ति की प्रतिक्रिया क्या हो? खुद अन्धविश्वासी हैं पर दुनियां की आंखों में समाज-सेवक बने हुए हैं। मकर संक्रान्ति पर किया हुआ इन पूंजीपतियों द्वारा यह दान, वरदान है या उपकार का अभिशाप?

[६] "भैया मुझे कुछ मिल जाय!"—किसानों और मजदूरों की दुर्दशा पर तरस खाने वाले एक प्रगतिशील लेखक अपने बंगले से लेफ्ट—राइट करते चले जा रहे है। उन्हें इतना भी ध्यान नहीं कि उनके पैरों तले निरीह मानवता सिसक रही है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बाजार का एक चित्र

[गर्मी के दिन ! रुई बाजार का मैदान ! समय करीब तीन बजे दिन ।]

यहां पढे लिखे आदमी भी हैं और अपढ़ भी। धनवान भी हैं और अपने भाग्य की बाजी लगाने वाले गरीब भी। सौ आदमी आप हमेशा यहां देखेंगे। जब कभी 'घट---बढ' आती है तो लोग चिल्ला उठते हैं—'दो पचास ली सौ' फिर क्या है। टूट पड़ते हैं, चिल्लानेवालों को घेर कर। आदमियोंके इस गोल में धंस जाना या उसमें से बाहर निकल आना सरल नहीं है।

जब विशेष 'घट-बढ' नहीं रहती तो इधर उधरकी बात करते हैं, पास में पडी मेज पर बैठ कर ये लोग। कुछ लोग चार पांच की संख्या में मिल कर पेडकी छायामें सुस्ता लेते हैं। कुछ गांव गली की चर्चा कर लेते हैं, तो कुछ बीती बहार के संतरे मुंह बना कर खा रहे हैं। कोई आम के छिलके चूप रहा है तो कोई प्याऊ पर लड रहा है कि भैया मुझे ही पहिले पानी पिला दे।

शहर की कौन सी घटना है जिस पर यहां बहस नहीं होती। काम ही क्या है इन लोगोंको। दिन भर 'ली बेचो' चिल्लाते हैं और राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक सभी बातोंकी चर्चा करते हैं। जब बहस छिड जाती है; तब देखिये इन को। साधारण आदमी भी इस तरह बोलता है मानो बडा भारी पण्डित हो अपने विषय का। उसके तर्क सुन कर तो बड से बडा साहित्यिक भी अंगुली दबा लेगा अपने मुँह में। इस रुई बाजार के मैदानमें प्रतिभाके कण बिखर बिखर पडते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक दिन रामभरोसे कह उठे---क्यों भई, अपनी इस संस्था की समाधि पर फूल चढाने आप लोग जाते हैं या नहीं ?'

'क्या कहते हैं आप ! किधर है आपका निशाना'.... विमलचन्द ने बीडा सुलगाते हुये कहा ।

'यही अपना सार्वजनिक पुस्तकालय । कभी इसका चुनाव भी होगा या नहीं ?'

'आप चुनावकी बात करते हैं । मैं कहता हूं कि बारह वर्षमें इसका कभी वार्षिक विवरण भी निकला है ? पता नहीं इसके सन्चालक लोग सार्वजनिक संस्थाओं को भी अपनी बपौती क्यों समझ बैठे हैं ? ये लोग सोचते होंगे कि हमसे कोई पूछने वाला ही नहीं । कोई पूछेगा तो पता चलेगा ।"

किशोरीलाल ने विमल के कन्धे पर थाप मारते हुये कहा-'भैया इनसे कौन पूछता है ? देखते नहीं पदाधिकारियों के चुनावमें सच्चे कार्यकर्ताओंको जगह नहीं मिलती । वे ही लोग पदाधिकारी बनाये जाते हैं जिनका चेहरा चिकना हो, दीखने में खूबसूरत हो; बैंक में जिनका अधिक पैसा जमा हो, जिनके पास मोटर हो, कारखाना हो और सिनेमा घर हो, देखते नहीं ये सेठ मटरूमल जो फूटा अक्षर भी नहीं जानते पुस्तकालय के सभापति बन बैठे और मन्त्रीजीका यह हाल है कि उन्हें यह भी पता नहीं कि 'साधना' का सम्पादक कौन है और विश्वभारती कहांसे निकलती है ! ऐसे तो मन्त्री हैं सार्वजनिक पुस्तकालय के।

'दी दस'—अचानक आवाज आई ।

'ली बीस' उसका उत्तर मिला । न किसी ने दी और न किसी ने ली ही। एक बडा सा गोल बनकर बिखर गया । फिर सब इधर उधर हो गये ।

4

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किशोरीलालका हाथ पकड कर मेज पर बैठाते हुये रामभरोस ने कहा— 'किशोरीलालजी, आप इसका सामूहिक विरोध क्यों नहीं करते ?'

खूब कही सामूहिक विरोध की आपने ! अरे चुनावके समय में उपस्थित था। चुनाव क्या था—मजाक था मजाक। पैसों पर मत बिक रहे थे। पूंजीवादी समाज पद्धतिमें प्रजातन्त्रका ढकोंसला पाखण्ड नहीं तो क्या है ? पहिले ही से नाम निश्चित कर रखे थे। जैसे ही नाम सूचित होता, वैसे ही स्वीकृत हो जाता। विरोध करके व्यर्थ में बैर कौन मोल लेता।

दीनानाथ बी० ए० ने खखार कर थूकते हुये कहा—'ऐसे समयमें मौन रहना तो पाप हे। सत्य बातके लिये तो लडना चाहिये। योग्य आदमियों को ही स्थान दिलाना चाहिये।

'दीनानाथ जी, आप 'गरज हट' (ग्रेजुएटका अपभ्रंश अर्थात अपनी 'गरज' से नौकरीके लिये जाय तो 'हट' जिसे उत्तर मिलता हो) हैं; किंतु अभी तक आपको समझमें यह भी नहीं आया कि कमजोरोंके लिये जो पाप है धनवानोंके लिये वही पुण्य है। पाप को पुण्यमें बदल देनेके लिये उनके पास पैसा रूपी साधन भी तो है।' खीसे से इलायची निकालते हुए रामभरोसजी ने कहा। (सब हँस पडते हैं)।

'लाओ पचास'—'सौ ली'—'दो सौ दी' की आवाजें इधर उधर से आने लगीं। फिर वही नरमुण्डों का गोल।

एक दूसरेका मुंह पकडकर कोई पीछे ढकेल रहा है तो कोई किसीको बोलने भी नहीं देना चाहता। थोडी देर चहल पहल। फिर वही शांति।

'कहिये रामभरोस जी कोई नई खबर है क्या ?'

सेठ मदनलाल ने पानका डिब्बा आगे बढाते हुए कहा-'कुछ नहीं जी यही अपने सार्वजनिक पुस्तकालयकी बात कर रहे थे।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'अजी जाने भी दो इन फालतू झमेलों को। ये कहो कि रुई में मन्दी जचती है या तेजी?'

"भाई साहब जंचती तो मन्दी है क्योंकि सुना है कि सरकार रुई पर नियन्त्रण करना चाहती है। इसलिए रुईमें तेजीकी गुंजायश नहीं दिखती।"

मदनलाल के जाते ही किशोरीलाल जी ने कहा--'ये देखिए हमारे देश के 'सट्टा छाप' युवक, जिन्होंने 'हाय धन' के नारे पर देशके सांस्कृतिक जीवन की बलि चढा दी! कितना सीमित है इनका जीवन। शुष्क और नीरस। छिः! रुई पैदा करें किसान और भाव निश्चित करें ये लोग'! वाह भई खूब अन्धेर है!!

अरे यह 'सेवा भवन' क्या बला है भैया बनवारी! सुनते हैं सेठ केदार नाथ अपनी इस संस्थाके लिए अपने मिल मजदूरोंकी तनख्वाह में से पैसे काट लेते हैं। यह भी सुना है कि उनको मासिक वेतन कम दिया जाता है और सही अधिक रुपयोंकी रसीद पर कराई जाती है।' रामलाल ने बडी सजगता से उत्सुक होकर पूछा।

'इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है। सभी कारखानदार ऐसा करते हैं। ये बडे बडे दान, कांग्रेस फण्ड, शिक्षा प्रचार फण्ड, विधवा सहायता फण्ड आदि —क्या अपने खीसेसे निकाल कर दिये जाते हैं? अरे नाम इनका, काम मजदूरों का। इतनी मोटी बात भी नहीं समझते। तब तो जल्दी ही दिवाला निकलेगा तुम्हारा इस सट्टे बाजार में। (सब हँस पडते हैं)।

'यार मुझे क्या मालूम। मैंने तो आज यह बात दगडूमल जी से सुनी थी, इसलिये यह पूछा है। पर यह तो बताओ कि सेठ साहबसे मजदूर तो खुश हैं। सुना है उन्होंने बोनस भी खूब दिया है'—बनवारीने जिज्ञासा भाव से पूछा।

'भाई बात यह है कि अपढ मजदूर तात्कालिक लाभको ही अधिक समझते हैं। यही तो कारण है कि बरसों बीतने पर भी ये अपने अधिकारोंके लिये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नालायक हैं। इनकी गरीबी इन्हें सोचनेका मौका ही नहीं देती कि इनका सारा सुख धनपतियों की इच्छा पर निर्भर है। उनकी भौंहों पर बल पडते ही इनकी झोंपडियों में प्रलय मच सकता है। इनके बच्चे रोटी रोटी के लिये मुहताज हो सकते हैं। ये खूब जानते हैं कि इन कमकरों की क्रांति ठीक उसी तरह सरलता से दबाई जा सकती है जिस तरह से भौंकते कुत्ते का मुंह रोटी का टुकडा डाल कर। जाने भी दो इन बातों को।' रामलालजीने एक लम्बी सांस ली और आगे बढ गये प्याऊ की ओर।

देखा आपने साढ़े पाँच हजारके लोभ में आकर हमारे इतने बडे नेता वायसराय महोदय की कौंसिल में चले गये! नटवरभाई बडा पतन हो गया है अपने नेताओं का'। सेठ अमीचन्द ने अन्यमनस्क हो कर कहा।

सेठ साहब आप नेताओं को क्यों दोष देते हैं। देखते नहीं सैकडों के घर कुडक करवा कर, बिकवाकर, गिरवी रख कर बरबाद कर दिए जाते हैं। जहां दूसरे देश के पूंजीपति अपने उपनिवेशों और गुलाम देशोंसे लाभ उठाते हैं वहां आपके भाई बन्द अपने ही देश की कंगाली पर वैभव का बंगला बांध रहे हैं। फिर बताइए दोष किसका। जैसी जनता वैसे जननायक।

"अरे बडा बुरा हुआ। सुना है अपने गांव का अनमेल विवाह तोडक मण्डल टूट रहा है"—दीपचन्द जी ने जल्दी जल्दी आकर कहा। उनकी सांस फूल रही थी।

"सब सुना है दीपचन्द जी"। उदासीन भाव से नटवर भाई ने कहा—राय बहादुर माँगीलालजी की लडकी का विवाह है। किसमें ताकत है जो उसे रुकवा दे। किसी गरीब का होता तो गिरफ्तारी वारंट निकलवा देते, अभी तक। पर यहां तो राय बहादुर से मुकाबला है। मण्डल के सभापति हमारे सुधारक नेता जी सेठ साहब से बिगाड कर अपनी हानि कर लें ऐसे बेवकूफ नेता नहीं हैं। ना है किसी "शारदा मन्दिर" को कुछ दान दिलवा कर बात रुकवा दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसीलिए अन्य कार्यकर्ताओं ने नाराज होकर 'मण्डल' का तोड देना ही ठीक समझा; क्योंकि 'नियम' हो तो सबपर बराबर लागू होना चाहिए। क्या गरीब क्या अमीर।'

अच्छा ही है। निर्जीव संस्था का रहना और न रहना दोनों ही बराबर है—दीपचन्द ने मन मारकर कहा।

"अरे यह क्या। यह पंडितजी कभी ज्योतिषी और कभी वैद्यराज, कभी कर्मकांडी, और कभी कथावाचक, कभी विद्यालय के आचार्य और कभी किसी संस्था के मन्त्री। वाह भई, गिरगिट की तरह रंग बदलना कोई इनसे सीखे, —एक पंडित की ओर इशारा करते हुए गांव के हँसोड़ कन्नूमलजी ने अदा के साथ पगडी का पेच संभालते हुए कहा। पंडितजी तो बेचारे शर्मके मारे इस तरह चलते बने मानों किसी ने कहीं कुछ कहा ही नहीं।

भारद्वाज ने कहा—क्यों कन्नू आज इस पगगड बाज पंडित का नम्बर आ गया क्या ?

'नहीं जी यों ही सोच रहा था कि संस्थाका मन्त्री बनना बड़ा अच्छा है। हाथ के तले मुफ्त का नौकर। एक प्रायवेट सेक्रेटरी।

संस्था का पैसा बिना व्याज से खर्च करने को है। अच्छी शान शौकत और मान पान। कहीं कलेक्टर से मिलने जाना हो तो किसी सेठकी मोटर मांगी मिल ही जायगी। देखते नहीं, तभी तो हमारी सार्वजनिक संस्थाओं के ये मन्त्री दस वर्ष बीत जाने पर भी जनता को यह बताना नहीं चाहते कि इनको संस्थाने क्या उन्नति की है और ऐसे बुध्दुओं को ये लोग 'कार्यसमिति' में रखते हैं जिन्हें सार्वजनिक कार्यों में कोई दिलचस्पी नहीं। ऐसे मन्त्रियों को तो किसी भारी रियासतका मन्त्री बनाना चाहिए था'।

"जिससे रियासत की प्रजा इनका जीवितावस्थामें ही श्राद्ध कर दे; क्यों भारद्वाज ?" (सब हँसने लगते हैं)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"लाओ कौन बेचता है, ली पांच सौ, हजार ली" की चिल्लाहट से सहज ही रुई में २५ टका बढ गये। मदनलालजी दौडे दोड आये और लगे कहने-- वाह राम भरोसेजी, आपने तो कहा था कि रुई पर तो सरकार नियंत्रण करना चाहती है तो फिर यह तेजी कैसे आ गई ?'

'बात यह है मदनलालजी की रुई तो अपनी तबियतके अनुसार दो मुंहे सांपकी तरह चलती है। कभी इधर कभी उधर। इसका कोई अन्दाज ठीक ढंगसे नहीं लगा सकता।' रामभरोसजी दूसरी तरफ मुंह फेरे फेरे ही कह गये।

'अरे रामभरोसजी यह 'घमेला-छाप' ट्रेड मार्क भी आने लगा है क्या अपने सट्टे बाजार में ?' रामलाल ने रामभरोस के कानमें धीरेसे कहा।

'अजी यही क्या, यहां तो कई 'घमेला छाप' आते हैं। कौन पूछता है इन बकीलोंको। दिनभर कोर्टमें मक्खी मारते हैं मक्खी। पहिले के दिन गये जो इन्होंने भोली भाली जनता को आपसमें लडाकर अपना उल्लू सीधा किया।''... बीचमें ही बात काटकर रामलाल ने कहना शुरू किया....'' और अब भी क्या काम करते हैं ये कमकश। दिनभर झूठा सच्चा करके लडाते रहते हैं दुनियाको और कहते हैं कि दुनियाकी भलाई करनेके लिये ही हमारा अवतार हुआ है। यदि इस पेशेमें पवित्रता होती तो गांधी, जवाहर, और राजेंद्र बाबू वकीली क्यों छोडते ? आप किसी का गला काट लीजिये और एक हजार रुपया देकर वकील खरीद लीजिये। फिर देखिये वह किस तरह तर्पण करता है कचहरीमें सत्य का। एक सट्टा बाजार ही ऐसा बचा था जहां कुछ सचाई देखने में आती थी, वहां भी इन घमेला छापोंके चरण पहुंच गये। लाखों का सौदा जबानी होता है पर कभी कोई उलझन नहीं आती। भगवान ही रक्षा करे अब ! देख लेना।

यदि दो दोस्तोंको लडा कर इन भोले भाले व्यापारियोंको ये कचहरी में खडा न कर दें तो कहना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कर्णराय बीचमें ही बोल पडे--'भैया अपनी प्राचीन पंचायत प्रथा बडी अच्छी थी। पता नहीं ये नये नये कानून इन लोगोंने क्या गढे हैं कि हमारी तो समझमें कुछ नहीं आता और ऊपर से एल-एल० बी० लोग जानबूझ कर ऐसी भाषा का सहारा लेते हैं जिनसे जनता इनका मुंह ताकनेके सिवा कुछ नहीं समझती। 'अपील' का लालच बताकर न जाने इन लोगोंने कितने घर बर्बाद कर दिये हैं।' ठीक कहते हो कर्णरायजी यदि कल कचहरियां बन्द कर दी जांय तो इन वकीलों को कोई १०) माहवार मे भी नौकर न रखे और यह सारी ऐंठ अपनी कानून की भूल जायं। ये लोग हमेशा इसी प्रतीक्षा में रहते हैं कि कब कोई किसीका सिर फोडता है। कब कौन किसी की जगह हडपता है। अशांति के इच्छुक ये लोग समाज का कोढ़ हैं। जितनी ही इनकी संख्या बढ़ती जाती है, देशमें ईर्ष्या, द्वेश, मत्सर, लोभ, लडाई, झगडा तथा विश्वासघात बढता जाता है। लोग समझा देते हैं कि तुम डरो मत। हम कचहरी में सब ठीक कर लेंगे। यदि समाज में शांति रहे और किसी प्रकारका झगडा न हो तो जनता क्या इन वकीलोंका फोटो घरमें लटकाकर पूजा करेगी?

दीनानाथ बी० ए० ने कहा--ये लोग कई गरीबोंको मुसीबत से बचा भी देते हैं।

'बचा देते हैं अपना सिर। ये तो पैसेवालोंके गुलाम हैं। गरीबों के पास पैसे ही कहाँ हैं जो ये उन्हें बचाने जाते। हां, ये उन्हें तबाह करनेके लिए जरूर अपने पास बुला लेते हैं अपने अटर्नीके द्वारा।' रामलाल ने सतेज होकर कहा।

एक, दो, तीन, चार, पांच, छ टना टन घण्टाघर ने छः बजाए। पांच दस मिनट में ही वह रुई बाजार की झांकी समाप्त हो गई। धीरे धीरे सब खिसक गए। अपने अपने रास्ते लगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

छद्मयोगी

"गुरुदेव ! आशीर्वाद दीजिये कि मैं देवी चामुण्डाका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकूं।" रानी अलकनन्दाने आचार्य पद्मनाभके चरण छूकर कहा। आचार्यका वरद हस्त रानीके मस्तक पर था किन्तु वाणी मौन थी।

आसामका पहाडी प्रदेश। रानी अलकानन्दाकी जागीर। वार्षिक आय लगभग सवा लाख। सूरमा नदीके दक्षिणी तटपर उनका शाही महल था। वैभवमें दिन गुजरते थे। उपासिका थी वह चामुण्डा की। देवीका मन्दिर महलसे दक्षिणकी ओर निर्जन पहाडी भागमें धलेश्वरीके किनारे पर था जहां रानी प्रतिदिन दर्शनके लिये जाया करतीं थी। उसने पढकर सोचा था और सोचकर समझा था कि साधना द्वारा देवीके दर्शन हो सकते हैं। निश्चय कर लिया था उसने इस बातका।

आचार्य पद्मनाभ रानी अलकनन्दाके गुरु। देवी चामुण्डा के पुजारी धलेश्वरीके तटपर आचार्य की कुटी। परम तपस्वी। संसार को समझा और परखा था अनुभव के बल पर। रानीके अतीव आग्रहसे भी जब गुरुदेव चामुण्डाके प्रत्यक्ष दर्शन न करा सके तो रानी रूठ गयी। आचार्यने बहुत समझाया कि देवी का प्रत्यक्ष दर्शन संसारका कोई भी मानव नहीं कर सकता इसलिये तुम यह हठ छोड दो किन्तु रानीने एक न माना। वह अपनी बातपर अडी थी। गुरुदेव व्यथित हृदयसे चल दिये। सूरमाको पारकर उत्तरकी ओर महेशकालीके तट पर उन्होंने अपना डेरा जमाया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नगरमें यह बात फैल गयी थी कि रानीसे रूठकर गुरुदेव चल दिये। फिर क्या था। रानीके पास बडे बडे योगिराज आने लगे। रानी उनसे चामुण्डा के दर्शनकी बात करती। सभी उसे विश्वास दिलाते किन्तु रानीका मन सोचकर रह जाता कि जिस बातको गुरुदेव असम्भव कहते थे उसे ये लोग कैसे सम्भव कर सकते हैं। हो सकता है कि वे ठीक कहते हों। फिर वह सोचती कि गुरुदेवने इस तरह मुझे दर्शन न करानेके लिये न जाने क्यों इनकार किया। यदि चाहते तो क्या असम्भव था। कई योगिराज आये पर रानीको विश्वास न दिला सके।

नीलाचल का पहाड। अपूर्व शोभा। इस पर चढनेका रास्ता ढलुआ है। असंख्य यात्रियोंके पद-घर्षणसे यह स्थान चिकना होगया है। विशालकाय ब्रम्हपुत्र इसका पाद प्रक्षालन करता है। दक्षिणकी तरफ खासी पहाडियाँ हैं और उत्तर को तरफ सुनहले धानके खेत मनको मुग्ध कर लेते हैं। इसी पर्वत पर योगी शंकर गिर रहते हैं। अभी तक किसीने इनका नाम नहीं सुना था। आज ये रानी अलकानन्दा से मिलने जा रहे हैं।

रानी आज प्रसन्न दिखाई देती है क्योंकि उसके मनकी साध पूरी होने वाली है। आज वह श्रृंगार करेगी क्योंकि चामुण्डाके प्रत्यक्ष दर्शन होनेवाले हैं। रानी सुसज्जित हुई। पासमें एक छोटीसी कटार भी ले ली। आज वह स्वयं देवी बन गयी थी। रात्रिके सन्नाटेमें रानीका रथ राजधानीसे बाहर चुपचाप निर्दिष्ट स्थान की ओर जा रहा था। अकेली रानी, सारथी और योगी शंकरगिरि। बस चामुण्डा के मन्दिर से कुछ दूरी पर ही सारथी को छोड दिया गया क्योंकि देवीके प्रत्यक्षके दर्शन तो सभी नहीं कर सकते।

मन्दिरमें प्रवेश करते ही डाकुओंके एक गिरोहने रानीको घेर लिया। सँभलकर बहादुर रानीने कटार का वार कर दिया। वार खानेवाले ने योगी शंकरगिरिकी ओर देख कर बडे कष्टसे कहा--स....र....दा....र। इसके बाद मिट्टीका ढेर हो गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रानीने शंकरगिरि के छद्मवेशमें नीलाचलके प्रसिद्ध डाकू को देखा और अपने लाखोंके आभूषण धीरे धीरे उतार दिये।

रानीने आचार्य पद्मनाभको ढुँढवानेकी बहुत कोशिश की पर कहीं पता न चला। महेशकालीके तटपर रानीने अपने गुरुदेवका समाधि मन्दिर बनवा दिया है। वह अब चामुण्डाके मन्दिर न जाकर आचार्यकी समाधि पर फूल चढाने जाती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हिन्दी विद्यापीठ का छात्रावास

समय—रात्रि के ९ बजे। विद्यापीठ के चार पांच विद्यार्थी अपने कमरे में बैठकर गपशप लड़ा रहे हैं। रमेश कुछ अनमनासा दिखाई देता है।

भारद्वाज—क्यों भई रमेश, खैरियत तो है सब। तुम कहते थे कि घर से चिट्ठी आई है, कोई गड़बड़ तो नहीं!

"गड़बड़ क्या है यार (रमेश ने एक लम्बी सांस लेकर कहना शुरू किया) सरकार आजकल जुल्म पर उतर रही है। माता जी ने लिखा है कि राजगढ़ में ऐसा एक भी मकान नहीं जिस पर सरकारी जर्मान दबाने का अभियोग न लगाया गया हो। सब पर नजूलवालों ने मुकदमें चला रखे है।"

भारद्वाज—हां, ठीक तो है। इस समय सरकार को पैसे की जरूरत है, जैसे तैसे जनता से पैसा वसूल किया जा रहा है। जो युद्ध-कोष (वार-फंड) में पैसा भर देता है वह नजूल के मुकदमे से बच जाता है। हमारे गांव से भी चिट्ठी आई है। वहां भी यही चल रहा है।

शाण्डिल्य—अजी यह तो सब देश भर में चल रहा है। तुम भी क्या हो रमेश। बस, जरा सी बात से घबरा गये। अरे, किसी वकीलके जरिये पांच-पचास मार दो मत्थे में उसके। मामला खतम।

रमेश—हां योंही करना पड़ेगा। क्या करें इसका इलाज नहीं है। यदि मुकदमा कोर्ट में पेश हो गया तो सैकड़ों रुपये खर्च हो जायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वास्तवमें हमने सरकारको कोईजमीन नहीं दबाइ। यह तो एक प्रकार का दण्ड है। देना ही पड़ेगा। इसे चाहे रिश्वत समझिये, या और कुछ !

अखिलेश—आखिर मामला क्या है ?

रमेश—हमारा मकान २४०० बर्ग फीट है। आज से बीस साल पहिले कोई साहब ने जब पट्टा बदलवाया वह गलती से २२५५ फीट कर दिया गया। मैंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया क्योंकि नजूल रेट डेढ़ रुपया जैसा पहिले था वैसा ही बाद में भी रहा। अब नजूल वाले हमेशा तंग करते हैं कि आपने सरकार की १४५ वर्गफीट जमीन दबा ली। आपही कहिये क्या यह भी न्याय है ? हमने तो सरकार से चौबीस सौ फीट जमीन खरीदी थी। फिर जानबूझ कर हम अपनी जमीन कम क्यों करते !

भारद्वाज—अजी आज कल सचाई का जमाना ही कहां है। नजूल वालोंकी ट्रेनिंग ही ऐसी है कि वे चाहे जिस मकान में दोष निकाल सकते हैं। जहां उन्होंने ओटा या दिवाल गिराने की धमकी दी कि जनता को उन्हे कुछ न कुछ देना ही पडता है।

रमेश—अभी तो मैंने यही निश्चय किया है कि अपने मित्र दीनानाथ वकील को ५०) रु० भेज दूं। ताकि वह मुकदमें की पैरवी करें और रेकार्ड सुधरवानेका प्रयत्न करे।

भारद्वाज—क्या खाक पैरवी करेगा तुम्हारा वकील ! भैय्या कुछ पैसे आप खा जायगा और कुछ नजूल वालों को देकर खुश कर देगा। तहसीलदार साहब को तो पता भी नहीं चलेगा। इन रिश्वत वालों ने सरकार को तो एकदम बदनाम कर दिया है।

रमेश—खैर, सिर पर की बला तो टली। जब कोई दूसरा नजूल वाला आयेगा, तब देखी जायगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अचानक सुपरिंटेंडेंटका प्रवेश। सब विद्यार्थी इधर उधर होकर कमरे में अपनी सीट पर बैठ जाते हैं। एक बन्द खिडकी को खोलने के लिये भारद्वाज को इशारा करते हैं और चलते हुये शाण्डिल्य को समझाते हैं कि 'लाइट' की ओर पीठ करके बैठना चाहिये ताकि पढते समय आंखों पर जोर न पडे। सुपरिन्टेंडेन्ट के चले जाने के बाद फिर वही गपशप।

भारद्वाज—(अपनी सीट पर बैठे हुये दूर से ही चिल्ला कर) अरे, ओ शाण्डिल्य ! एक नयी बात सुनी तुमने ?

शाण्डिल्य—(किताबों को करीने से रखते हुये) पुरानी बातें तो किताबोंमें फिरभी पढ़ सकते हैं। पर हाँ, अरे क्या कहा भैय्या ?

भारद्वाज—सुना है कि शारदाचरण कल कलेक्टर का इंटरव्यू लेने पहुँचा था।

शाण्डिल्य—धाक जमाने पहुँचा होगा। क्योंकि कलेक्टर मि० चॅटर्जी नये आये हुए हैं न यहां !

भारद्वाज—धाक तो क्या किन्तु पहिचान करने गया होगा क्योंकि दोनों बंगाली हैं न !

शाण्डिल्य—तो क्या कहता था ? अपनी तारीफ करता होगा !
बड़ाचंट है शारदाचरण। शायद वह छिपे छिपे 'लोकमत' के सम्वाददाता का कार्य भी करता है।

भारद्वाज—कहता था कि मि० चॅटर्जी बड़े अच्छे सहृदय आदमी हैं।

रमेश—(सजग होकर बीच में ही बोल उठा) क्या कहा ? साहब और सहृदय। कहीं पीकर तो नही आये ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भारद्वाज—भैय्या रमेश। जिन्हें तुम साहब कहते हो वे मि० चॅटर्जी भी तो हिन्दुस्तानी हैं। कोई भी पढ़ा लिखा आदमी पत्थर दिल का नहीं होता। मजबूरी और परिस्थितियाँ आदमी को पत्थर बनने के लिये विवश करती हैं। मगरूर तो ये होते हैं नीचे दर्जे के सिपाही जो साढ़े तीन पैसे में चार मिलते हैं और अपने को कलेक्टर से कम नहीं समझते।

रमेश—किन्तु सरकारी नौकरी पर तो कोई भी जाय उनके दिमाग का पारा आसमान में चढ़ जाता है।

भारद्वाज—रमेश! सोचो तो, ऐसा कौनसा आदमी है जिसके हृदय में अपने देश के प्रति प्यार न हो। बहुत से सरकारी नौकर मेरे दोस्त हैं जिनको आंसू बहाते देखा है मैंने एकान्त में। अपने भाइयों पर जुल्म करते उन्हें खुशी नहीं होती। उनका दिल रोता है। यदि देश उनकी रोटियों की व्यवस्था कर देता तो वे नौकरी तक छोड़ देते।

अखिलेश—ठीक कहतेहो भारद्वाज। देखते नहीं देश के मुनाफाखोरोंने अनाज और कपड़े के भाव इतने बढ़ा दिये हैं कि लाखों युवकों को मजबूर होकर नौकरी करनी पडी। इनकी भी वही हालत होनी चाहिये जो जर्मनी में यहूदियों की हुई थी।

भारद्वाज—अरे यह क्या। महेश तो सो रहा है। मै समझता था कि किताब पढ़ रहा है बेचारा! (सब हंसते हैं)

(हँसी सुनकर छात्रावास का नौकर बुधुवा कमरे की ओर आता है किन्तु केले के छिलके पर से रपट कर गिर जाता है। कमरे के बहुत से छात्र निकल कर हंसने लगते हैं)

बुधुवा—मैं तो गिर पडा और आप हँस रहे हो भाई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"नहीं, नहीं बुधुवा, हम तुम्हें नहीं हंसते। हम तो महेंद्र को हंस रहे हैं कि साड़े दस नहीं बजे और नींद की गोद मे लुढक गया।" भारद्वाज ने हंसी रोक कर कहा।

कोलाहल को सुनकर आंख मलते हुये महेंद्र भी वहां पहुंच गया। उसे चौकन्ना देख कर भारद्वाज उसे कमरे में ले आया और कहने लगा कि कुछ नहीं महेंद्र, बुधवा गिर पडा था; इसलिये लडके हंस रहे थे। सो जाओ।

कमरा फिर अट्टहास से गूंज उठा।

———

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

साहित्यिक का स्वप्न

प्रयाग के दारागंज मुहल्लेमें मेरे एक दोस्त रहते हैं। लस्टम पस्टम मस्त शरीर गजानन को शर्मिन्दा करनेवाला उनका गोलाकार पेट, प्रारम्भिक पाठशाला के बच्चों को पृथ्वी का आकार पढाने की क्षमता रखता है। दर्जनों किताबों के लेखक। बडे भावुक। नाम उनका आप जरूर जानना चाहेंगे। हां, तो सुनिये। प्रयाग गया तो कहने लगे कि विचारवन्हि, तुम्हें तो आज नाश्ता करवाकर ही जाने दूंगा। बीचमें ही गडबडदत्त ने रोक कर पूछा— "अरे भाई विचारवन्हि, अपने दोस्त का पहिले नाम तो बता दो।"

मै भी क्या हूँ। बातों की ट्रेन छूटने तक की देर है, बस, - होश नहीं रहता कि क्या बोल रहा हूं। देखिये, भूल ही गया न नाम बताना। नाम है उनका—तुषारकान्ति। बड़े सज्जन। बडे मिलनसार। कहने लगे " क्यों विचार वन्हि, राजा महेन्द्रनाथ तो तुम्हारे विद्यार्थी थे, अब वे तुम्हारे विरुद्ध प्रचार क्यों करते हैं ? भैय्या हमारी समझ में तो कुछ नहीं आता,- मैंने कहा-"तुम तो जानते हो तुषारकान्ति कि मैं "वृश्चिक" हूं। मुझे छूनेतक की देर है कि छठी का दूध याद आ जाता है। यदि कोई दबाव डाल दे मुझपर तब तो तुम जानते ही हो नतीजा क्या होता है। साढे छ फीट का शरीर पीपल के पत्त की तरह डोल जाता है। धरती पकडकर बैठना ही याद आता है। हाय!, हाय!!' का इलाज नहीं हुआ तो हमेशा के लिये 'मौनंव्रतं' की नौबत आ जाती है। भला मेरी और राजा साहब की कैसे पटती ? उन्हें तो पूँछ हिलाकर लपकनेवाले चाहिये। आजकल वे ही उनके यहां दूध पीते है। नाम 'टायगर' है तो क्या हुआ। आखिर हैं तो 'पालतू कुत्ते'। बस यही वृश्चिक और कुत्तों के जीवन का भेद है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक स्वाभिमानी है और दूसरा स्वामिभक्त। एक से लोग सतर्क रहते हैं, तो दूसरे की गोद में मस्तक रखकर सो जाते हैं। अब आप ही बताइये मेरी और उनकी कैसे पटती ?

तुषारकान्ति—'लेकिन यह तो जानते हो विचारवन्हि कि उनके पैसों के बिना अपना गुजारा भी तो नहीं। उनका ही पैसा और उनकी ही हजामत ! लोग क्या कहेंगे।'

"क्या पोच बात तुमने कह दी भैया। अरे ये लोग जब हमें पैसा देते हैं तो क्या हम पर उपकार करते हैं ? क्या किसी पूंजीपति ने बिना स्वार्थ के एक कौड़ी भी किसी लेखक को दी है ? विद्रोह की भावना को दबाने के लिये ही क्या हमारे सामने उपकार का प्रलोभन नहीं फेंका जाता ? आज जो इनके स्वामिभक्त कुत्ते हैं वे भी प्रलोभन के टुकड़े न मिलनेपर क्या इन्हें काटेंगे नहीं ? जब ये लोग जनताका शोषण करके उन्हीं को गालियां देते हैं तब इनको दुनिया कुछ नहीं कहेगी ? खूब कह दी तुमने। तभी तो इतनी किताबें लिखकर भी जनता की आंखों में तुम उपेक्षित रहे। अब बुर्जुवा लोगों की प्रशंसा से भरा यह क्षयी साहित्य लिखना जरा बन्द कर दो तो तुम्हारा जन्म सुधरे और देश का भी कल्याण हो।"

तुषारकान्ति—पर मेरी समझमें यह नहीं आया कि भारतीय पूंजीपति देश का शोषण कैसे करते हैं। व्यापारसे मुनाफा कमाना भी क्या बुरा है ?

"तुम ने भी प्रेम कहानियां लिख लिख कर जीवन बरबाद कर दिया, पर एक मोटी बात नहीं समझ सके। हमारे पूंजीपति जानते हैं कि भारत सरकार इनकी कमाई का करीब ९५ प्रतिशत अतिरिक्त लाभ के नाते ले लेगी किन्तु तब भी ये ५ प्रतिशत के लोभ को छोड़ न सके और अपने कारखानों से उत्पन्न होनेवाले माल का मूल्य दिन प्रतिदिन ऊंचा करते गये।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तुषारकांति-बिलकुल ठीक है। अब आया मेरी समझ में। तभी चण्डकण्डू खत्री ने 'मारवाड़ी-लाज' में कहा था कि भारतीय पूँजीपतियों को देशके लाभ का इतना ध्यान नहीं है जितना कि अपने व्यक्तिगत लाभ का।

"भारतीय पूँजी पतियों को 'स्वराज्य' की जरूरत भी क्या है। इनके लिये तो वही शासन—प्रणाली स्वराज्य है जिसमें ये लोग विदेशी पूँजीपतियों से समझौता करके देश का शोषण अबाधगति से कर सकें। भारतवर्ष की करोडपति फरर्मों को देख लीजिये! इन्होंने विदेशी पूँजीपतियों के साथ भागीदारी करली है और एक बड़ी पूँजी के बल पर व्यापार होता है। देश की भोली जनता की स्वदेशी भावना का लाभ उठाया जाता हैं, किन्तु वास्तव में उसका कुछ मुनाफा भारतीय पूँजीपतियों को मिलता है और अधिक विदेशी धनकुबेरों को। इसीलिये श्री. शंकरसहाय सक्सेना एम० ए० एम० काम० ने लिखा है कि भारतीय पूँजीपति आज शिखण्डी का का काम कर रहे हैं। बिमको, लिवर ब्रदर्स, इम्पोरियल केमिकल्स आदि कम्पनियां क्या भारतीय पूँजी पतियों की आड में भारतीय लोकमत को धोखा नहीं देतीं? तुषारकान्ति भैय्या, तुमने तो मेरी आंखें खोल दीं। चलो अब जरा नाश्ता कर लो।

'क्या कहा? आंखे खोल दीं!!"-मैंने चमक कर कहा। सचमुच ही मेरी आँखें खुल गईं और अपने को बिस्तर पर लेटा पाया। मेरा छोटा बच्चा मेरे ऊपर बैठ कर गं गं गं कर रहा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

म्युनिसिपल चुनाव

उमेश न जाने क्या सोच रहा है। अपनी बेचैनी को हलका करने के लिये अपने कमरे में इधर उधर घूम रहा है। शहर में म्युनिसिपल चुनाव की धूम है। अध्यक्षपद के लिये प्रतिस्पर्धा हो रही है। सुबह से न जाने कितने उम्मेदवार उमेश के यहाँ आ चुके। सभी का एक ही आग्रह-एक ही निवेदन--एक ही प्रार्थना-एक ही गिडगिडाहट—प्रान्त की राजधानी से निकलने वाले साप्ताहिक में एक प्रशंसात्मक लेख लिख दीजिये। उमेश असमंजस में है कि इन स्वार्थ-साधुओं को आखिर क्या उत्तर दे। अपने हानि-लाभ की परवाह न कर वह सबको निर्भीक उत्तर देता है। साथ ही जानता भी है कि यह व्यवहार इस युग में कितना मँहगा पडेगा।

"उमेश जी घर पर हैं?"

"हाँ, कौन? सेठ सरमण्डलजी! आइये, आइये, कहिये क्या बात है?" उमेश ने सभ्यता के शब्दों में स्वागत करते हुए कहा।

सेठ सरमण्डल-आप तो जानते ही हैं कि मै क्यों आया हूँ। समय बहुत कम है। चुनाव में मेरी मदद करिये। देखिये शहर की यह धर्मशाला, यह मन्दिर, यह बावडी और यह बगीचा-सब मेरे बनवाये हुये हैं। मुझे सेवा करने का मौका तो दीजिये।

उमेश—क्षमा करिये। ये सारी चीजें क्या आपने गरीबों के पैसे काटकर धर्मादा-फण्ड इकट्ठा कर के नहीं बनवाई? इस धर्मादे-फण्ड से बनवाई हुई चीजों पर क्या जनता का अधिकार है? क्या आप लोग अपनी शान के लिये इनका निर्माण नहीं करते? व्यापार में घाटा लगने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पर क्या आप इस धर्मादे फण्ड से बनी हुई धर्मशाला को किराये से देकर लाभ नहीं उठायेंगे ? बगीचे को अपना निवास नहीं बनायेंगे ? अपने शोषण के प्रति विद्रोह की भावना दबाने के लिये ये मन्दिर धर्म का सहारा लेकर क्या आपके पापों पर ढक्कन नहीं लगाते ? यह समाजसेवा है या उसका उपहास ?

सेठ सरमण्डल--खैर जाने दीजिये इन बातोंको। हमें तो विश्वास है कि आप अवश्य हमारी मदद करेंगे। अच्छा, नमस्ते।

सेठ साहेब को जाते देर नहीं हुई कि मि. मंडलेश्वर वकील आ टपके और लगे कहने–हलो मि. उमेश, चुनाव की धांधलीबाजी से तो आप अच्छी तरह परिचित हैं। सेठ लोग पानी की तरह पैसा बरबाद करके झूठा प्रचार करते है। कमेटी में तो पढे लिखे आदमी की जरूरत है। आप जानते ही हैं कि मैं वकील हूं। यदि मौका मिले तो देखिये मैं क्या करता हूँ।

उमेश--सेवा के लिये कमेटी का प्रेसिडेंट बनने की क्या जरूरत है वकील साहब ? सेवा के लिये तो संसार का बहुत बडा क्षेत्र खुला पडा हैं। किसी मुकदमे की पैरवी क्या आप इन मतदाताओं से बिना पैसे लिये करते हैं ? किसी सेठ से आप की मुट्ठी गरम होते ही इन गरीबों को जेल भिजवा देनेमें क्या आप अपनी सारी विद्वत्ता खर्च नहीं कर देते ? हैट लगाकर सूट-बूट के लहजे में प्रेसिडेंट की कुर्सी पर बैठकर इन भोले-भाले गरीब मतदाताओं से बात करने में आप अपनी तौहीनी तो नहीं समझेंगे ? इन्हीं मतदाताओं की राष्ट्र भाषा हिंदी में लिखी हुई अर्जियाँ सिर्फ इसीलिये तो नहीं ठुकरायेंगे कि वे अंग्रेजी में नहीं लिखी गई ?

बीच में ही बात काट कर वकील साहेब ने कहा--माफ करो मि० उमेश मैं आपसे ऐसी आशा नहीं करता था।

उमेश--मैं लाचार हूं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वकील साहब हैट उठाकर चलते बने।

ओ हो। लाला देशराज। आप जेल से छूटकर कब आये ?--उमेश ने सजग होकर कहा।

लाला देशराज--अभी दस दिन भी नहीं हुये। जेलसे छूटकर आया तो यहाँ दोस्तों ने चुनाव के लिये खडा करदिया। क्या करूँ भाग्य में जनताकी सेवा करते करते ही मरना लिखा है। सोचा चलो उमेश जी से मिलते चलें।

उमेश—बडी कृपा है आपकी किन्तु मैं नहीं समझ सका कि जेल और सेवा का क्या सम्बन्ध है। कमेटी का प्रेसिडेंट बननेके लिये जेल का सर्टिफिकेट तो जरूरी नहीं है। क्या ये नेता लोग 'मिनिस्टर' बनने के लिये जेल जाते हैं। सेवाका हुकूमत से क्या सम्बन्ध ? अत: आप इस पद के प्रलोभन से दूर रहें तो अधिक अच्छा।

(इतने में ही जोर से चिल्लाहट-"भैया साहब उमेश जी है क्या ?")

"कौन ? मियाँ अकबर अली, किधर भूल पडे।' अकबर अली–जनाब की खिदमत में हाजिर हुआ हूँ। एँ, आज लाला देशराज भी यहीं डटे हैं! (देशराज जी अभिवादन करके चलने लगे) नहीं नहीं बैठिये लाला जी। आपसे कोई बात छिपी थोडी ही है। आप तो जानते ही हैं कि मैं मुसलमानों की ओर से खडा हूं और उमेश जी यहां के मशहूर लेखक हैं। ऐसे मौके पर इनसे मिलना जरूरी था ! शायद कोई ऊंची सलाह मिल जाय।

लाला देशराज—हाँ हाँ आप बैठिये। मैं तो उठने में ही था कि आप आ गये।

(लाला देशराज चले जाते हैं)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उमेश—देखिये मियां अकबर अली। आप मुझसे यह उम्मीद मत करिये। शहरके हरिजन, ईसाई, सिख, जैन और अन्य सम्प्रदाय तथा धर्म के लोग भी क्या तुम्हारी तरह बातें करते हैं? वे भी तो अल्पमतके हैं। आप मेहरबानी करके इस तरह के झगडे न करें। यदि आप हिन्दू और मुसलमानका भेद न रखकर खडे होते तो मैं जरूर आपकी बात पर कुछ सोचता। मौलाना आजाद सिर्फ मुसलमानोंके होते तो क्या भारतवर्षके राष्ट्रपति बन सकते? सेवा भी क्या सम्प्रदाय का ध्यान रखती है?

बाहर कुछ कोलाहल हो रहा था। उमेशने खिडकीसे सिर निकाला तो घरके सामने सैकडों आदमी खडे थे। उमेश बाहर निकला ही था कि जनता के मुखियाने कहना शुरू किया—

भैया उमेश! हमने सुना है कि तू बडा समझदार है। बहुत पढा है। हम अपढ लोगोंका शुभचिन्तक है। राजनीति भी जानता है। सच बता कि हम किसे अपना सभापति चुनें?

उमेश गद्‌गद् हो गया। शान्त होकर बोला—प्यारे भाइयो! जिसे अपने एकमजले मकानको तिमंजला बनानेकी फिक्र न पडी हो, जिसे अपनी दूकानकी बिक्री बढानेकी चिन्ता न हो, जो गरीबोंकी नमस्तेका भूखा न हो और यदि एक शब्दमें सुनना चाहो तो कान खोलकर सुनो—तुम उसे अपना सभापति चुनो जो सेवा के नाम पर अपने स्वार्थका व्यापार न फैलाता हो।

एक साथ बहुत सी आवाजें आने लगीं। बस, बस हम समझ गये कि किसे हम अपना सभापति चुनें।

भीड तितर बितर हो गई। मियाँ अकबरअली न जाने कब सटक गये। उमेश अपने सिद्धान्तकी सफलतापर खुश था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ओ पण्डित

हमारी दिन भर की भाग दौड क्या तेरे अपमान के लिये थी ? ऐसा कौनसा बैर था तुझसे हमारा ? तूने इतना भी नहीं सोचा कि जो तुझे सिर झुकाते हैं क्या वेही तेरा अपमान करेंगे ? क्या तूने ही आवश्यकता से अधिक विलंब करके हमारे स्वागत के जलसे की शोभा नहीं बिगाड दी ? क्या इससे हमें बेचैनी नहीं हुई होगी ? क्या हम तेरे पास ठीक समय पर नहीं आये थे ? तेरे आने के पहिले ही हमने अपनी सभा की कार्यवाही शुरू करदी तो इसमें क्या तेरा कसूर नहीं था ? क्या इसीलिये तो तू नाराज नहीं हुआ ? क्या हुआ यदि एक छोकरे ने मजदूरों के लिये लिखने को तुझसे कुछ कह दिया तो ?

क्या यहां के हजारों मजदूर तुझसे बात करने आते तो तुझे अधिक सुविधा रहती, ऐसा तू समझता है ? तूने और तेरे साथियों ने जब पण्डाल में उस छोकरे को बोलने नहीं दिया तो उसके दिल में भी तो बेचैनी हुई होगी ? क्या उस बेचैनी का तूने अनुभव किया था ?

राष्ट्र, राष्ट्र चिल्लाने वाले पण्डित ! तू अपने साथियों के साथ एक मजदूर नेता की बात सुनने को भी तैयार नहीं ! उसने यही तो कहा था कि तूने अपनी पुस्तक पर चाहे देव पुरस्कार प्राप्त किया हो किन्तु कुछ मजदूरों पर भी लिखेगा ! क्या हुआ यदि एक बच्चे ने ऐसा पूछ लिया तो ? ओ पचपन बरस के बूढे एक छोटी सी बात से तू तिलमिला क्यों गया ? और यदि तेरे बुढापे के अनुभव ने भी तेरा साथ नहीं दिया तो कम से कम एक संस्था की नीयत पर हमला करते समय जरा अन्तर्मुखी होकर आत्म निरीक्षण तो करना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

था ? अरे इतना तो सोचना था कि जो सज्जन दुनिया के सामने तेरे आगे सिर झुकाता है उसकी श्रद्धा का मूल्य क्या चांदी के उन टुकडों के बराबर है जो तुझे अपने साप्ताहिक में विज्ञापन के लिये दिये जाते हैं ?

माँ भारती धन्य हो जाती यदि तेरी वाणी का सत्य तेरे जीवन में भी उतरता । हर बात में भारतमाता के मुकुट हिमालय की याद करने से ही राष्ट्र का उद्धार हो जायगा, ऐसा तू समझता है ! अरे क्यों दुहाई देताहै गोर्की, रूसो और वाल्टेयर के कलम की ? क्या तुझे विश्वास हो गया है कि तेरा चरित्र गांधी और जवाहर के चरित्र से बाजी मार ले गया है ? क्यों धोखा देता है दुनिया को ? जिसने जन्म भर तेरी प्रशंसा के गीत गाये उसी की नीयत पर तूने हमला किया ? क्या यह सच नहीं है कि तूने अपने मस्तिष्क का संतुलन खो दिया था ? कमसे कम मुझे अपनी सफाई तो पेश करने देता ? उसके पहिले ही इस तरह उबल पडने की क्या जरूरत थी ? क्या तुझमे मैं यही आशा करता था ?

तेरी महान राष्ट्रीयता एक कटु सत्य को भी नहीं पचासकी ? मैं मानता हूं कि तुझे ये सब बातें बुरी लगती होंगी । लिख क्यों नहीं देता एक गद्य काव्य । उसमें प्यार मत उँडेलना । ऐसी राष्ट्रीयता उँडेल कि मां भारती धन्य हो जाय और 'साहित्य देवता' के चरणों में एक अमर रचना की और बढती हो। धन्य है तेरी विद्वत्ता को कि हमारी पवित्र भावनाओं को तूने अपने अपमान की साजिश समझा । अरे वह 'छोकरा' तो न जाने कब धनपतियों के टुकडों पर बिकेगा किन्तु तूने तो अपनी तिलमिलाहट का प्रदर्शन करके जगत् को बतला दिया कि बिकना किसे कहते हैं । 'व्यवहार चतुरता' तेरी जय हो ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कार्य-समिति की बैठक

'साधना-मन्दिर'के कार्यसमितिकी बैठक। नियमानुसार श्री अग्निदेवकी अध्यक्षतामें कार्यवाही प्रारम्भ हुई। उपस्थिति निम्न प्रकारसे थी।

श्री अग्निदेव (सभापति) श्री भयंकराचार्य, (उप सभापति) श्री वृश्चिकानन्द (मन्त्री) श्री गरीबदास (सदस्य) श्री पाखंडगिरि (सदस्य) श्री धूर्तराज (सदस्य) पिछली बैठक की कार्यवाही पढकर सुनाई गई और वह सर्वसम्मतिसे स्वीकृति हुई। इसके बाद गरीबदासने पं० बैजनाथप्रसाद दुबेके लेखसे निम्नांकित वाक्य विचारार्थ उपस्थित किये।

"सम्मेलन जैसी साहित्यकारोंकी संस्था पर उन लोगोंका कब्जा है जो केवल सुन्दर योंजनाएँ बना सकते हैं। लाख दो लाखकी सम्पत्ति एकत्रित करनेकी युक्तियां सोचा करते हैं। कोई पत्र निकालनेके फेरमें पडे रहते हैं परन्तु कलाकारोंके संगठन करनेका उन्हें कभी ध्यान नहीं होता।...सेवाओंका मूल्यांकन हमारे मस्तिष्क नहीं करते। लक्ष्मी पुत्रोंकी पूजा करना और उन्हें सम्मान देना ही हमन सीखा है।" चर्चा होनेके बाद भयंकराचार्यने कहा कि श्री दुबेजीको उनकी स्पष्ट-वादिता एवं निर्भीकताके लिये धन्यवाद भेजा जाय। इसपर पाखंडगिरिने सूचना उपस्थित करते हुये कहा कि धन्यवादके साथ इतना और लिखा जाय कि दिवसके प्रकाशमें लक्ष्मी पुत्रों की पूजा करना और रात्रिके अन्धकारमें यदि सेवाओंका मूल्यांकन किया जाय तो कोई बुरी बात नहीं है।

समर्थन और अनुमोदनके बाद प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ। मध्य भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सम्बन्धमें लेखकके निम्नांकित शब्द बहसके लिये पेश किये गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"कार्यकारिणी और प्रबन्धकारिणी की बैठकोंके लिये उज्जैन वालों और इन्दौर वालोंके यहांसे अलग अलग निमन्त्रण आ रहे हैं। इससे ऐसा भ्रम उत्पन्न हो गया है कि किस निमन्त्रणको सार्थक समझा जाय और किसे निरर्थक। यह सब उन महानुभावोंकी छत्रछायामें हुआ है जो मध्य भारतमें ही नहीं, भारतमें सम्मान पा चुके हैं।"

धूर्तराजने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि एक संस्था (सम्मेलन) में दो प्रबन्धकारिणी (उज्जैन और इन्दौरमें) कहांसे आईं। बहसके बाद यह सर्वानुमतिसे निश्चय हुआ कि यह कार्य अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके मन्त्रीको सौंपा जाय। वे दोनों सज्जन जो निर्णय देंगे वह उज्जैन और इन्दौरको भेज दिया जाय। वहांके लोग माने या न माने उनकी इच्छा ! प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

इसके बाद 'अज्ञात' जीका पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था—"साहित्य देवताके मंदिर में दलबन्दीका होना अत्यन्त निन्दनीय है।" इस पर धूर्तराजने कहा कि, 'अज्ञात'जी को लिख दिया जाय कि वह आचार्य अग्निदेव की लिखी हुई 'हिन्दी में दलबन्दी का इतिहास' नामक पुस्तक जरा पढ लें और बाद में मुँह खोलें।' सभी सदस्योंने स्वीकृति सूचक सिर हिलादिया और निश्चित हुआ कि 'अज्ञात'जी को इसी प्रकार का उत्तर देना उचित है।

समय अधिक हो रहा था किन्तु वृश्चिकानन्द मन्त्री ने 'अज्ञात'जी का प्रार्थनापत्र पेश किया, जिसमें उन्होंने निवेदन किया था "प्रांतीय सम्मेलन संगठित हों।" इस महत्वपूर्ण विषय पर विचार करना आवश्यक समझा गया और एक स्वर से 'कार्यसमिति ने निश्चय किया कि 'अज्ञात'जी को लिखा जाय कि वे अपने अखबारमें मोटे अक्षरों से छाप कर इस बात का प्रचार करें। शुद्ध घी-दूध के अभाव में भारतीयों की दृष्टि बहुत कमजोर हो गई है, अतः छोटे अक्षरों में छापने से बहुत कम लोगों में प्रचार होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसके बाद बैठक का कार्य समाप्त किया गया। और एक अन्तिम विषय "सम्मेलनके अन्तर्गत ही हिंदी साहित्य के प्रचार, संशोधन, निर्माण और खोज तथा प्रकाशन का कार्य होना चाहिये"—साधारण प्रश्न समझकर छोड़ दिया गया क्योंकि 'अज्ञात'जी का यह विषय था और यदि वे स्वयं एक सम्मेलन बनाकर मन्त्री बन जायं तो प्रश्न सहज ही हल हो जाता है। अन्त में धूर्तराज ने एक चायपार्टी दी। पान सुपारी के बाद लोग उठ गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हमारा सांस्कृतिक जीवन

एक 'सूटेड-बूटेड' आदमी को देखकर हम कहते हैं सभ्य सुसंस्कृत। क्यों? कारण स्पष्ट है कि उसकेपास समाज की सभ्यता और संस्कृति की सतह पर खड़े होने के लिये साधन है। एक फटेहाल भिखमंगे को देखकर कहते हैं—असभ्य, गंवार। क्या उसका सांस्कृतिक जीवन गिरा हुआ है? कभी नहीं बशर्तें कि उसके पास भी अपनी आर्थिक उन्नति के कुछ साधन होते। एक रईसबिना 'रैपर' खोले ही किसी दैनिक अखबार को फाड़कर फेंक देता है। क्या ऐसे आदमी का सांस्कृतिक जीवन ऊंचा समझाजायगा जिसे समाज और देश में क्या अग्निकाण्ड हो रहा है इसकी जरा भी परवाह नहीं? किन्तु ऐसे व्यक्तियों को सभ्य समाज का सभापति होते किसने नहीं देखा। क्या इस रहस्य को भी समझाने की जरूरत है?

एक व्यापारी सट्टे में पाच सौ रुपया माहवार कमाता है और विश्वविद्यालय का एक स्नातक पचास—दोनों में अधिक सभ्य कौन है? आध्यात्मिक जगत में स्नातक और इस भौतिक जगत में व्यापारी! समाज और देशके लिये किसका जीवन अधिक उपयोगी है? बातोंमें स्नातक का और व्यवहार में व्यापारी का!! जिसकी जिन्दगी समाज और सरकार को धोका देकर मुनाफा बटोरने में बीती है वह सभ्य और जिसने अपना जीवन तप और साधना की वेदी पर चढ़ा दिया वह हमारे लिये उपहास की सामग्री—असभ्य। यदि सट्टा और मुनाफाखोरी बन्द हो जाय तो इन आज के सभ्य लोगों का फल क्या होगा?

अक्सर देखा जाता है कि धनवानों के बच्चे पढ़ने में कमजोर रहते हैं। क्यों? वे जानते हैं कि परीक्षा के समय हम चढ़ा दिये जायेंगे। पैसे से क्या नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

खरीदा जा सकता ? सभ्यता और संस्कृति भी अपवाद नहीं। उन्हें मालूम है कि पढ़े लिखे लोगों को हम नौकर रखकर काम चला लेंगे। फिर माथापच्ची क्यों करें।

देश के सांस्कृतिक विकास के लिये सर्व साधारण की आर्थिक अवस्था का ठीक होना अत्यावश्यक है क्योंकि सभ्यता तथा संस्कृति और आर्थिक उन्नति में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। यही कारण है कि एक अंग्रेज की दृष्टि में एक हिन्दुस्तानी 'असंस्कृत' है और हमारी दृष्टि में एक भील या संथाल। जिस तरह दो राष्ट्रों के कला और साहित्य, दर्शन और विज्ञान, धर्म और नैतिकता में भिन्नता रह सकती है उसी तरह दो आदमियों के दैनिक जीवनमें भी। रीति रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, वेश भाषा और आचार-विचार को देखकर ही तो निश्चित करते हैं कि अमुक आदमी अधिक सभ्य और सुसंस्कृत है। इसका स्पष्टकारण अपनी अपनी आर्थिक सुविधा है। एक अपना मानसिक विकास कर सकता है, दूसरा नहीं। यदि मानव इतिहास के प्रत्येक कौम की संस्कृति उस काल के विशिष्ट आर्थिक जीवन का प्रतिबिम्ब है तो हमारे देश के वर्तमान सांस्कृतिक जीवन की स्थिति स्पष्ट हो जाती है जहाँ चालीस करोड़ में सिर्फ चार लाख सुखी हों।

एक भिखमंगे को देख कर इच्छा हुई तो हम कुछ दे देते हैं नहीं तो पास में पैसा रहने पर भी इन्कार कर देते हैं। कभी इच्छा होती है कि ये भिखमंगे समाज का कोढ है। इन्हें गोली क्यों न मार दी जाय। राष्ट्र का धन व्यर्थ बरबाद करते हैं किन्तु यह स्थिति क्या हमारे सभ्य और सुसंस्कृत कहलाने वाले लोगों के पापों का फल नहीं है ? समाज और सरकार पर क्या इसका कुछ भी उत्तरदायित्व नहीं ? उन्हें भीख देना हमने धर्म समझ लिया। किन्तु इससे समस्या तो हल नहीं हुई। उनका जीवन सिर्फ हमारी इच्छाओं पर निर्भर रहे, क्या यही हमारी सभ्यता और संस्कृति सिखाती है ? आज हमारे सामने एक प्रश्न है—पूँजीवाद या सांस्कृतिप्रगति। मानव जाति के इतिहास की युग-सन्धि पर हम खडे हैं। इतिहास हमसे इस प्रश्न का आज स्पष्ट उत्तर चाहता है।

———

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शिक्षक और समाज

'गुरुजी' कितना प्यारा शब्द है, जिसके सुनते ही हृदय में स्नेह का संचार होता है। 'गुरु' कितना मीठा शब्द है, जिसके कानों में पडते ही श्रद्धा और भक्ति हृदय में उमड पडती है। कहाँ गये वे शब्द जिनमें शक्ति थी दो हृदयों को मिलाने की। आज ये शब्द बहुत कम सुनने में आते हैं।

'टीचर' और 'मास्टर' सुनतेही इच्छा होती है कि मास्टर की 'टर' उडाई जाय; क्यों कि वे 'चर चर' तो पहिले ही करते हैं, फिर डरने की इसमें क्या बात। आह! प्राचीन समय में अपने गुरु के प्रति शिष्य के क्या भाव थे और आज क्या हैं। यह याद आते ही अपनी दशा पर लज्जा से मस्तक उठना नहीं चाहता।

भारत की यह दशा क्यों हुई ? क्या भारत देश ही बदल गया या इसकी जलवायु ही बदल गई ? क्या हिमालय अब न रहा या भागीरथी दूसरी हो गई ? क्या निर्झरों ने अपनी छल-छलाहट छोड दी या कल-कल करने वाली नदियाँ ही मूक हो गईं ? क्या शीतल, मन्द-सुगन्ध पवन ने बहना बन्द कर दिया या लताच्छादित स्थान झुलस गये ? क्या पक्षी चहचहाना भूलगये या देश में सहृदय बालक ही न रहे ? क्या पढाने वाले त्यागी पुरुष ही न रहे या पढने वाले बालक ही न रहे ? कुछ समझ में नहीं आता।

पाठक मुझे कुछ बहका हुआ मानेंगे। बात भी कुछ ऐसी ही है। जीवन में कुछ ऐसे क्षण आते हैं कि मनुष्य पागलों की तरह प्रलाप करने लगता है और संसार उससे प्रेम। क्यों न मैं इसे वही समय समझूं ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

समाचार- पत्रों में अधिकतर देखने में आता है कि राष्ट्र के निर्माता कहलाने वाले अपनी अपनी दल बन्दियाँ बना कर अपने अपने मत के प्रचार पर तुले हुए हैं। कुछ लोग बाल-विवाह को ही देश के पतन का कारण समझते हैं तो कुछ लोग विधवा-विवाह को उत्थान का। कुछ लोग अछूतोद्धार में ही देश का उद्धार देखते हैं तो कुछ लोग खादी में राष्ट्र का कल्याण। कुछ लोग ग्राम सुधार को स्वर्ग की सीढी समझते हैं तो कुछ चर्खे को सुदर्शन चक्र। कुछ जातीय संगठन को जादू समझते हैं तो कुछ सत्याग्रह को पांचजन्य शंख से कम नहीं समझते। पाठक सोचते होंगे कि फिर वही प्रलाप शुरू कर दिया, किन्तु क्या कोई कह सकता है कि इस प्रलाप से प्रेम करने वाले दुनिया में कोई नहीं है? अवश्य हैं, पर वे हैं बहुत थोडे।

देश इस समय ऐसी चीज चाहता है जो उसे अन्धकार से खींच कर प्रकाश में लादे। अंधेरे में घूमने वाले को चिल्लाकर उपदेश देने की जरूरत रहती है; प्रकाश में चलने वाला अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करता है। यदि आज भारत की प्रजा अपने साहित्य से अच्छी तरह सुशिक्षित होती तो हर जगह हमारे राष्ट्र निर्माताओं को गला फाडकर यह व्याख्यान झाड़ने की आवश्यकता न होती कि 'अरे भाइयो! यों नहीं यों करो'।

इस ओर बहुत कम लोग ध्यान देते हैं कि 'शिक्षा' क्या है और वह कैसी होनी चाहिए। हाँ यों चिल्लाने वालों की संख्या तो और मिल जायगी कि देश के बालक ही राष्ट्र के स्तम्भ हैं, देश के छोटे छोटे बच्चे ही राष्ट्र-नौका के भावी कर्णधार हैं, राष्ट्र के बच्चे ही उसकी सच्ची संपत्ति हैं, राष्ट्र का भाग्य ही उसके बच्चों पर अवलंबित है पर इन बच्चों के भाग्य-विधाताओं की ओर ध्यान देने वाले बहुत कम हैं। उनकी करुणकहानी कितनी दर्दनाक है, इसका अनुभव करने वालों को तो ढूँढना ही पडेगा।

भारत के शिक्षक-संसार की अत्यन्त शोचनीय दशा देश के भारी अधः पतन की सूचना देती है कालेज के कुछ प्रोफेसर और हाईस्कूलों के कुछ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अध्यापकों को छोड दिया जाय और विशेषतः प्रायमरी स्कूल के शिक्षकों की दशा देखी जाय तो वह स्थिति दिखाई देगी जिसे देख कर पत्थर-दिल भी रो पडेगा। हमारे राष्ट्र-निर्माता देश के उत्थान के लिए अपनी सारी शक्तियां लगा कर चाहे जितना प्रयत्न करें, किन्तु जबतक वे हमारे शिक्षक–संसार की दशा का अनुभव नहीं करते तबतक राष्ट्र का अपने स्थानसे ऊँचा उठना असम्भव है। देश पतन के भारी गर्त में तो उसी दिन झुकगया था जिसदिन हमारे राष्ट्र-निर्माताओं के भाग्यविधाता यहां नौकर समझे जाने लगे। देश भूल गया कि हमारे यहां शिक्षक का स्थान कितना उँचा था यह राष्ट्र का दुर्भाग्य है कि हमारे शिक्षक झाडू देनेवाले नौकरों से भी बदतर समझे जाने लगे। यह हृदय का उबाल नहीं, लेखक का आँखों देखा सच्चा हाल है।

भारत को छोड कर ऐसे कितने राष्ट्र हैं जहाँ के किन्हीं किन्ही शिक्षकों को उनका वेतन तबतक न मिले जब तक वे अपनी टूटी खाटपर तडप तडप कर राष्ट्र निर्माताओं को दयार्द्र दृष्टि से देखते हुए, भारत के दुर्भाग्य पर आँसू बहाते हुए और अपने भाग्य को कोसते हुए अपने प्राण न त्याग दें।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बेचैनी के क्षणों में

एक आदमी की स्त्री बीमार है। डाक्टर ने उसे दवा दी और बतलाया कि अंगूर के साथ मौसंबी का रस पीने को दो। जिसे रोटियां नसीब नहीं, उसके साथ क्या यह दिल्लगी नहीं है ? कुछ दिनके बाद स्त्री सख्त बीमार हो जाती है। गरीब घबडाया हुआ डाक्टरके पास पहुँचा। डाक्टर अच्छी तरह जानता है कि मैं मरीजको बचा सकता हूं किन्तु आवश्यक रुपया न मिलनेके कारण वह मरीजकी अवहेलना करता है। स्त्री मर जाती है।

एक आदमी की किसी व्यापारी से दुश्मनी हो जाती है। व्यापारी धनवान और जिद्दी है। उस आदमीके घर में वह कुछ सामान डलवा कर पुलिस में रिपोर्ट करवा देता है। तलाशीके समय गरीबके घरमें चोरी का सामान बरामद होता है। गरीब के पास पैसा नहीं कि वह वकील करके मुकदमा लडे। व्यापारी का चतुर वकील अपनी विद्वत्तासे गरीब को चार माहके लिये जेल भिजवा देता है।

एक आदमी का बच्चा प्रतिभाशाली है। पैसे उसके पास नहीं कि अपने लडके की व्यवस्था उच्चशिक्षा दिलानेके लिये कर सके। गरीब आदमी की सिफारिशकी समाज में शक्ति ही क्या। गरीब का प्रतिभाशाली बेटा अपनी अविकसित प्रतिभा को लेकर एक दिन राख का ढेर हो जाता है।

एक आदमी के कुटुंब में उसकी स्त्री, छोटा भाई और बच्चे मिलाकर कुल चार--पाँच जीव हैं। जितना कमाता है उतना ही खर्च हो जाता है। मौत और विवाहके समय कर्ज लेना पडता है। ब्याज बढता जाता है। कर्ज

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चुकाने पर साहूकार घर कुर्क करवा कर उसे बेघरबार कर देता है। उसका कुटुम्ब नष्ट हो जाता है!

एक आदमी हाथ पैर से मजबूत है। नौकरी के लिये दर-बदर घूम रहा है। उपदेश सब देते हैं। नौकरी कोई नहीं देता। चोरी कर लेता है। जेल जाना पडता है। वहाँ पूंजीवादी प्रजातन्त्र पद्धति ने खाने पीने और रहनेकी व्यवस्था कर ही रखी है।

नौजवान स्त्रियाँ भीख मांगती हैं। गालियां खानी पडती हैं। इज्जत बेचती हैं तो गर्भ रह जाते हैं। भ्रूण हत्या करती हैं तो समाज उन्हें सजा देता है। नहीं करती तो बच्चों को क्या खिलावें।

ऐसे बहुत से प्रश्न हैं जो किसी भी पढे लिखेके दिमागमें आ सकते हैं और यदि वह बेकार है तो इन प्रश्नों पर सोचनेके लिये वह मजबूर हो जाता है।

शिक्षित बेकार भला चुप कैसे बैठे। उसे समझाया जाता है कि धर्मशालायें, धावड़ियाँ, अस्पताल और सार्वजनिक बगीचे ये सब आम जनताके सुखके लिये बनाये जाते हैं। वह सोचता है कि यह सब नाटक क्या इसीलिये नहीं है कि भारतवर्ष की कोटि-कोटि जनता शोषण प्रणाली के प्रति विद्रोह न करे। क्या वह अपनी भावी सन्तान को मुट्ठी भर लोगों का मुहताज बना रहनेके लिये भगवान-के भरोसे पर यों ही छोड दे? जिस राष्ट्रमें कोटि-कोटि मानवोंका भाग्य चन्द मनचलोंकी इच्छा पर निर्भर है उस देश में कोई भी स्वाभिमानी क्या अपनी इज्जत बेचे बिना गौरवमय जीवन व्यतीत कर सकता है? क्या वकील और उनकी कानूनी शक्ति को प्रभुत्व और पैसेके बल पर खरीदा नहीं जा सकता? तब क्या यह सम्भव है कि मानव जाति ऐसे देश में सुख और शांतिमय जीवनकी कल्पना करे? ऐसे देशमें क्या सेवा का भी कोई मूल्य हो सकता है? पंडित माखनलाल चतुर्वेदी मे हिन्दी की प्रखर प्रतिभा है और उनके साथ उज्वल एवं तेजस्वी अनुभव चिपका हुआ है। वे हरिद्वार अधिवेशन में अपने सभापति पदसे कहते हैं—"कोटि-कोटि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

साधनों से भरे राज और वैभवशील में थोड़ा सा सतोगुण दिखा, थोड़ी सी उदारता दिखी कि लगे हम उसे ईश्वर सिद्ध करने और साधारण जन सन्तत्व साधनामें भर गया और हमने माना कि यह तो उसे करना ही था। जिन्होंने तज दिया, उनका तो रोजगार था, और जो सम्पूर्ण भोगोंके बीच थोडा सा छोड़े, यह छोडना उनका ईश्वरत्व है।" डेढ सौ वर्षों में जिस प्रकारका शिक्षण यहाँ दिया जा रहा है उसका रूप डा. भीखनलाल आत्रेय एम. ए. डी. फिल के शब्दों में देखिये— "संस्थाओं द्वारा प्राप्त मनोहारी प्रमाण पत्रों, सम्मान परिच्छेदों और चिह्नों की आडमें ऐसे नर-पिशाच मिलते हैं जो शक्ति और पदार्जन करनेके लिये घोरसे घोर अपराध करने में नहीं चूकते और ऐसे नरभक्षी मिलते हैं जो दूसरोंकी गाढी कमाई लूटकर, घूस लेकर और सभ्य ढंगकी डकैती कर अपनेको मोटा बनाते हैं। ऐसे व्यक्तियोंको हमारे राजनैतिक नेताओं, जनसेवियों, वकील, बैरिस्टरों, डाक्टरों और प्रोफेसरोंके रूपमें भरमार है।" (लोकमत दिवाली अंक, २८-१०-४२) क्या इस सचाई पर भी परदा डाला जा सकता है? क्या लक्ष लक्ष भारतीयोंको गाढी कमाई को व्यापार दक्षता और प्रबन्ध कुशलताके सम्मानित नामसे लूटा नहीं जा रहा है? क्या देशके धनपति राष्ट्रके दुर्दिनमें एक ओर मुनाफेका अमित लाभ उठाकर दूसरी ओर नेताओंके स्वागतमें कुछ रुपया खर्च करके ख्याति प्राप्त करनेका दुरंगा अभिनय नहीं करते? क्या हमारे उर्वर दीमागोंने अपने ही भाइयों को कुचलनेके लिये अपनी प्रतिभाको गिरवी नहीं रखा? फिल्म व्यवसाय के बहाने देशकी महंगी पूंजीसे राष्ट्रकी सन्तान को ऐयाश बनानेकी चाल कबतक चलती रहेगी? अप्राकृतिक माध्यमसे अस्वाभाविक शिक्षण जबरदस्ती लादकर भारतीय तरुणाई पर अनुचित बोझ कब तक लादा जायगा? हमारी सुख और शांति ऐसे बहुतसे प्रश्नों का हल चाहती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रयाग में चार दिन

प्रयाग नाम ही बहुत प्रिय है। वह तीर्थराज तो है ही, साथ ही हमारे साहित्यिकोंकी पुण्य-भूमि भी है; अतः हरएक हिन्दू और हिन्दी-प्रेमी वहाँ जानेके लिये उत्सुक रहता है तथा खुशीका अनुभव करता है।

६ नवम्बर १९३८ का प्रभात था। ढीला पायजामा, शर्टपर सफेद स्वेटर, पैरोंमें मानसूनी खड़र (चप्पल) और खुला सिर—यह थी मेरी वेष-भूषा, जब मैं इलाहाबाद स्टेशन पर उतरा। प्रयागी पण्डोंने मुझे तंग नहीं किया शायद उन्होंने मुझे मुसलमान समझा हो; लेकिन जब मैंने इक्केवालेसे दारागंज चलने के लिये कहा तो 'सीन' बदल गया। पण्डोंने मुझे गिद्धकी तरह घेर लिया मानों मैं कोई मांसका टुकड़ा था। उनमें शर्त लग गयी थी कि कौन इस नये आसामीको उल्लू बनाता है। मैंने अपने मित्र पं० गिरीजादत्तजी शुक्ल 'गिरीश' का पत्र उन्हें बताकर रास्ता लिया। वे सब मुँह देखते रहे।

दारागंजकी एक चक्करदार सकरी गलीमें गिरीशजी किरायेके मकानमें रहते हैं। मुझे देखते ही उनकी बिट्टी चिल्ला उठी, "शर्माजी आ गये।" उस समय गिरीशजी घरपर नहीं थे, अतः सामान रखकर मैं गंगास्नानको चल दिया धीरे-धीरे धूप बढ़ रही थी और मैं पुलकी छायामें गंगाकी सफेद चमकदार मिट्टीको देखते हुए चला जा रहा था। पत्थरका कहीं नाम नहीं। ठीक तो है, गंगाकी कोमल गोद में कठोर पत्थरका क्या काम। मुझे बहुत देर तक चलना पड़ा, क्योंकि गंगाकी धारा दारागंजसे बहुत दूर सरक गया थी। वहाँके लोगोंके शब्दों में कह सकते हैं कि गंगाजीने अपना स्थान बदल दिया। करीब दो घण्टे भगवती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भागीरथीकी शीतल क्रोडमें बिता दिये। इच्छा होती थी की वहीं बैठा रहता किन्तु किसी तरह दिलको समझाकर उठा और घर पहुँचा। गिरीशजी आ चुके थे। वे मुझे ऊपर के कमरेमें ले गये। टेबिलपर ज्योतिषशास्त्रकी कुछ किताबें रक्खी थीं। मैंने छूटते ही पूछा, "यह शौक कबसे? "दिल बहलानेके लिये यह अच्छा विषय है और अब तो मैंने इसमें बहुत तरक्की कर ली है।" उनका सहज उत्तर था। इतने ही में नाश्तेके लिये कुछ मिठाई आयी और थोडी देरके बाद भोजनकी सूचना भी। भोजनके बाद फिर हम अपने उसी कमरेमें आ गये। गिरीशजी इस समय "तारक-वध' नामक महाकाव्य लिख रहे हैं। * लगभग दस-बारह सर्ग लिख भी चुके हैं। मेरा अन्दाज है कि यह महाकाव्य हिन्दीमें प्रकाशित वर्तमान सभी महाकाव्योंसे आकारमें बडा होगा। हां, तो वे इसी महा-काव्यके कुछ सुन्दर अंश चुनचुनकर सुनाने लगे। गिरीशजीके गानेका तरीका सादगी लिये हुए था। खास मौकोंपर वे मेरी सम्मति भी मांगते थे। मैं बहुत संकोचके साथ अपना मत प्रकट करता था लेकिन वे मेरी सूचनाओंको वहीं नोट करते जाते थे। इसे मैं उनकी शालीनता ही कहूंगा। उन्होंने मुझे अपनी चार किताबें भेंटमें दीं जिसमें 'महाकवि हरिऔध' और नवप्रकाशित 'बहता-पानी' अधिक प्रसिद्ध हैं।

तीसरे पहर के ढलते-ढलते हम घूमने निकले तो 'व्यथित हृदयजी' के यहां पहुँचे। वहीं पर हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मौलवी महेशप्रसादजी से भी भेंट हो गयी। मौलवीजी अपने विषय के पण्डित, हँसमुख तर्क करने में चतुर और आर्यसमाजी विचारों के हैं। कुछ साहित्यिक चर्चा के बाद उठते समय 'व्यथित हृदयजी' ने अपनी तीन किताबें दीं जिसमें 'दोनों की भूल' और 'मजदूर का दिल' मुख्य हैं।

दूसरे दिन गिरीशजी, मैं और व्यथित हृदयजी ने विचार किया कि श्रीमती विद्यावती 'कोकिल' के यहां चला जाय और वह भी पैदल। कृष्णाश्रम के पास पहुँचकर हम रास्ता भूल गये। मैंने पूछा, "और कितनी दूर चलना पडेगा?"

---

* तारक वध अब समाप्त होकर छप चुका है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गिरीशजी से उत्तर मिला, "कोकिल के लिये कुछ कष्ट तो करिये।" बडी मुश्किल से 'कोकिलजी' के बंगले पर पहुंचे। उस समय वे कुछ पढ रही थीं। हमको देखकर खडी हुई और बैठने का इशारा किया। मेरे दोनो मित्र तो एक सफेद गद्दी से सुशोभित पाटे पर डट गये और मैंने भी अपनी आदत के अनुसार एक आराम कुर्सी संभाली। गिरीशजी ने अपनी हमेशा की 'टोन' में कहा, कहा, "शर्माजी आपकी कविता सुनना चाहते हैं।" श्रीमतीजी स्त्री सुलभ सलजता से मुस्कराते हुए उठीं और अपने 'पत्र' के चार-पाँच अंक उठा लायीं। उन्हीं में से एक कविता सुनाने लगीं। कविता सुन्दर थी किन्तु पढने का ढंग कहीं अधिक सुन्दर था। यहां एक बात का उल्लेख कर देना जरूरी है कि इस सभ्यता के युग में धन्यवादात्मक शब्द बहुत महत्व रखते हैं और मुझे ऐसे शब्द कुछ देर से याद आया करते हैं। यात्रा के बाद अपने घर आनेपर मैंने बाकायदा पत्र द्वारा यह रस्म अदा की।

शामको सहज ही मेरे पुराने मित्र पं० ज्योतिप्रसादजी 'निर्मल' मिल गये। निर्मलजी फक्कड, बेपरवा, खूब हँसनेवाले, खुशमिजाज और हद दर्जे तक मजाक पसन्द आदमी हैं। उन्होंने हमें अखिल भारतीय स्वदेशी प्रदर्शनी में पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयीकी अध्यक्षता में उसी रातको होनेवाले गल्प सम्मेलन के लिये निमंत्रित किया। उसके संयोजक शायद निर्मलजी ही थे। मैं तो इलाहाबाद शौकिया फिरने गया था, तब ऐसा मौका क्यों चूकता। एक तो साहित्यिक मित्रों से मिलने का लोभ और दूसरे अपने पूर्वपरिचित मित्रके सभापतित्व में गल्प सम्मेलन। बस, इक्का किया और ठीक मौकेपर गिरीशजी को साथ लेकर प्रदर्शनी के 'गेट' पर जा धमका। पहली सलामी में ही फाटकपर हमसे टिकट मांगा गया। गिरीशजी कुछ गम्भीर हो गये किन्तु मास्टरी करते-करते मुझे तो अंट-संट उत्तर देनेकी आदत हो गयी थी। "टिकटके लिये निर्मलजीको पकडिये" मेरा उत्तर था! टिकटवाला कुछ झिझका और हम लोग निर्मलजी को साथ लिये गल्प-सम्मेलन के मंडपके पास पहुँचे। हमें यह जाननेमें देर न हुई कि वहाँ गल्प-सम्मेलन नहीं, गप्प-सम्मेलन है किन्तु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सम्मेलन के सभापति इस रहस्य से शायद बिलकुल अनभिज्ञ थे। वे एक बडा लम्बा-चौडा विद्वतापूर्ण भाषण लिखकर लाये थे। निर्मलजी की कृपा से हमें बहुत ही अच्छी जगह बैठने को मिल गयी थी। वाजपेयीजी ने एक पृष्ठ भी नहीं पढा था कि मण्डप में हुडदंग शुरू हो गया। कुछदेर तक तो वे न समझ सके किन्तु बाद में उन्हें अपना भाषण बन्द करना पडा। फिर क्या था। गल्प-सम्मेलन में फडकते हुए बाजारू शेर उडने लगे, जिन्हें सुनकर कुछ महिलाएँ भी उठकर चली गयीं। किसी तरह सम्मेलन समाप्त हुआ। प्रदर्शनी से बाहर निकल कर न जाने क्यों मेरे मुँह से सहज ही निकल गया, "क्या गल्प-सम्मेलन के सभापति पैदल जायँगे।" शायद निर्मलजी ने सुन लिया और शीघ्र ही हम तीनों के लिये अपनी तरफ से इक्के का प्रबन्ध कर दिया। उस दिन वाजपेयीजी की जो मनोदशा थी उसका उल्लेख करना जरूरी नहीं है।

तीसरे दिन गिरीशजी के साथ पूर्वपरिचित सरस्वती सम्पादक पं० देवीदत्तजी शुक्ल से मिला। शुक्लजी सीधे और सरल आदमी हैं। एक उदाहरण काफी होगा। बातों के सिलसिले में उन्होंने कहा, "भइया, हमरे आफिस में जब कभो कोई स्त्री आवत है तो हमरी तो ट्रायल हुइ जात है।" वहाँ से उठने के बाद रास्ते में मैंने गिरीशजी से कहा कि 'सरस्वती' का स्टैंडर्ड बख्शीजी के बाद से बराबर गिरते जा रहा है। ठीक यही विचार गिरीशजी के भी थे। मैंने प्रो० रामकुमार वर्मा से मिलने की इच्छा प्रकट की। वाजपेयीजी को भी साथ ले लिया। जब वर्माजी के बँगले पर पहुँचे तो वे सोये हुए थे। उन्हें मालूम होते ही वे अलसाई हुई आँखों से बाहर निकले। टी-पार्टी के बाद वर्माजी ने अपना एक एकांकी नाटक पढकर सुनाया। वर्माजी एक खूब अदा के साथ पढनेवाले, धीरे-धीरे हँसनेवाले, आराम पसन्द, मिलनसार, सुशील, खुशतबियत और क्रोध को छिपाने में चतुर आदमी हैं। करीब दो घण्टे साहित्य-चर्चा चली। गिरीशजी के अधिकारपूर्ण और निर्भीक उत्तर बडे मजेदार थे। वर्माजी को कहीं पार्टी में जाना था इसलिये हम खडे हुए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चौथे दिन प्रो० दयाशंकरजी दुबे से मिलकर साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं के सम्बन्ध में कुछ बातचीत की। दुबेजी ने कहा कि हमें ऐसे परीक्षक चाहिये जिनका विद्यार्थियों को उत्तीर्ण करने का स्टैन्डर्ड ४० फी सदी से कम न हो और ८० फी सदी से अधिक न हो; किन्तु यहां तो कुछ बात ही निराली है। दुबेजी का कथन 'आदर्श' था किंतु इस लेख का लेखक भी 'विशारद' परीक्षा के साहित्य विषय का परीक्षक है। मैं सोचने लगा कि मेरे पास तो १५ फीसदी से अधिक विद्यार्थी उत्तीर्ण नहीं हो सकते। अत: मैंने कहा कि 'विशारद' परीक्षा में 'प्रथमा' पास भी सम्मिलित होते हैं और मैट्रिक पास, बी. ए. पास, विशेष अधिकार प्राप्त करके शास्त्री आदि भी। ऐसी स्थिति में अन्य विश्वविद्यालयों की उपाधि परीक्षा में स्टैन्डर्ड की जो एक रूपता रहती है वह सम्मेलन की उपाधि परीक्षा में नहीं रह सकती। तब हम परीक्षक लोग आपके इस 'आदर्श' को लेकर चलने में असमर्थ हैं। गिरीशजी का कथन भी मेरे पक्ष में था। फिर अन्य बातोंपर चर्चा हुई। मुझे यह कहने में बिलकुल संकोच नहीं है कि परीक्षा मंत्री की हैसियत से दुबेजी जितने अधिक सफल हुए हैं उतने अन्य नहीं हुए। शामको इलाहाबाद एक्सप्रेस में बैठते समय भरे हुए मनसे सरल, निरभिमान, दृढचेता और कठिनाइयों में अपने नामको सार्थक करनेवाले मित्र 'गिरीश' को मैंने नमस्कार किया और बिदा ली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

व्यापार में सचाई

एक पुरानी कहावत का भावार्थ है—उत्तम खेती, मध्यम व्यापार, अधम नौकरी और निकृष्ट भीख। खेती हमारे यहाँ सर्वोत्तम धन्धा माना गया है। भारत के समान कृषिप्रधान धार्मिक देश में यह स्वाभाविक भी था किन्तु जब जीवन की आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं, तब व्यापार के बिना दूसरा कोई 'हल' न देखकर देश ने दूसरा नम्बर वाणिज्य को दिया। प्रस्तुत लेख का यही विषय है। नौकरी और भीख, जो हमारे यहाँ बुरी मानी गई हैं उनकी चर्चा हम यहाँ नहीं करेंगे।

'व्यापार' शब्द से ही कुछ ऐसा ध्वनित होता है कि हम परस्पर एक दूसरे की कठिनाई दूर करें, एक दूसरे को जीवनोपयोगी सामग्री प्राप्त करने में सहायता दें। यह तभी हो सकता है कि जब हम एक स्थान से कोई वस्तु प्राप्त करें और वह उस स्थान के लोगों को भेजें जहाँ वह नहीं मिलती। यही वह सहयोग है जिससे मानवता का विकास और प्रसार होता है। पशु तो यह कार्य नहीं कर सकते। इसीलिये 'लेन देन' शब्द 'व्यापार' का पर्यायवाची बन गया। इस एक शब्द में व्यापार का सारा रहस्य छिपा हुआ है।

यह 'लेन देन' अर्थात व्यापार प्रारम्भ में पवित्र भावनासे ही शुरू हुआ था किन्तु भारत में जब साम्राज्यवाद के कीटाणु प्रवेश कर गये तब स्वाभाविक था कि लोग पूँजी को आवश्यकता से अधिक महत्व देते। 'जन' की अपेक्षा 'धन' का मूल्य बढ गया। मनुष्यता की अपेक्षा वैभव अधिक आकर्षक हो गया। धीरे धीरे परिणाम यह हुआ कि 'व्यापार' में पवित्रता की भावना लुप्त होकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अपवित्रता बढ़ने लगी। येन केन प्रकारेण अधिकाधिक पूँजी इकट्ठी करना ही लोगों का एक मात्र ध्येय हो गया और परस्पर सहयोग की भावना जाती रही। लोग मानवतासे पददलित होते गये। महायुद्ध इसी का परिणाम है।

आज हरएक व्यापारी के सामने एक प्रश्न है– पैसा। वह जानता है कि पैसा प्राप्त होनेपर मैं धर्म और भगवान को भी खरीद सकता हूँ। इसीलिये गेहूँ का व्यापारी अच्छे गेहूँ बतलाकर खराब गेहूँ दिये जाता है। घी का व्यापारी उसमें वनस्पति घी मिला देता है, तेल का व्यापारी मूंगफली के तेल को तिलों का तेल कहकर बेचता है, चाय का व्यापारी चनेके छिलकों की कृत्रिम चाय बनाता है, खादी का व्यापारी मिलों से सूत खरीद कर जुलाहों द्वारा कपड़ा बुनवाकर खादी के नाम से चलाना चाहता है, चावल का व्यापारी नये चावल में कुछ ऐसी चीज मिला देता है कि वह पुराना जान पड़े जिससे कि वह उन्हें अधिक मात्र में बेच सके। दूध का व्यापारी दूध में अधिकाधिक पानी मिलाने का प्रयत्न करता है। कहाँतक गिनायें? सब तरफ यही हाल है। अपनी आत्मा से पूछिये-क्या यही व्यापार की सचाई है? क्या इसी उद्देश्य को लेकर प्राचीन पूर्वजों ने व्यापार की नींव डाली थी? क्या यही पारस्परिक सहयोग है? क्या आप इसी से मानवता का प्रसार करना चाहते हैं? क्या यही आपका 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सुनहला सिद्धान्त है?

लेकिन हम अपराधी किसको कहें जब सभी का यह हाल है। विश्व के महापुरुष सत्य के पुजारी गांधी के युग में क्या हमारे व्यापार की यही हालत रहेगी? क्या व्यापार को इतना नीचे गिरा दिया जाय कि हम उसका प्रायश्चित करने के योग्य भी न रहें! गाँधी की सत्यता अपने स्वार्थ के समय क्या बेमतलब की वस्तु बन जाती है? गांधी युग की सत्यता का इतिहास जब लिखा जायगा तब क्या यही सचाई पेश की जायगी? भारत की संस्कृति का ही दूसरा नाम संसार की संस्कृति है! भारत के सिद्धान्त विश्व कल्याण के सिद्धान्त हैं, भारत की शान्ति विश्व की शान्ति है अतः यदि हम लोग ही जीवन से सचाई को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तिलांजलि दे दें तो उसका परिणाम होगा वर्ग संघर्ष जिसके दर्शन कुछ अंशों में तो देश में होने भी लगे हैं। संसार के इतिहास में प्रतिक्रिया अनिवार्य है—हिंसाके विरुद्ध अहिंसा की, असत्य के विरुद्ध सत्य की, क्रांति के विरुद्ध शान्ति की। हम उसी की प्रतिक्षा में हैं। भगवान कृष्ण का यह देश, राम की लीला भूमि फिर से वह दिन देखे कि हमारे पवित्र व्यापार की धाक संसार में फिर से जम जाय।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

न्याय और कानून

'क्या.....शीर्षक लेख आपने ही लिखा था ?'

'जी हां, वह लेख मैंने ही लिखा है।'

'प्रेस में देने से पहिले लेख को आपने अच्छी तरह देख लिया होगा।'

—स्वीकारात्मक उत्तर की चाहमें सिटी मॅजिस्ट्रेट मि. मुल्कराजने कहा।

'आपकी बात मैं समझा नहीं। जब लेख मेरी कलम से निकला है तब यह सवाल ही नहीं उठता कि मैंने उसे बिना देखे प्रेस में छपने दे दिया। मैं जो कुछ लिखता हूँ आँख खोलकर लिखता हूँ और दिल पर जबतक कोई चोट नहीं लगती, मेरी लेखनी कागज पर चलती नहीं। अब आप ही बताइये कि लिखने के बाद मैं अपनी रचना को दुबारा क्या देखूँ। यह तो दुनिया का काम है—उसे देखे, मनन करे। पसन्द आवे तो दिल में रखे, और न पसन्द आवे तो मेरा कोई नुकसान नहीं।' पं. मधुसूदन को बीच में ही रोककर मॅजिस्ट्रेट ने कहा—नहीं नहीं, हम यह कहना चाहते हैं कि यदि तुमने अच्छी तरह सोच विचार कर यह लेख लिखा है तो कानून की रूह से तुम अपराधी साबित होते हो।'

'पं. मधुसूदन—वैसे तो आप को अधिकार है कि आप चाहे जिसे अपराधी साबित करें, क्योंकि गुलाम जन्म से ही अपराधी होता है किन्तु मेरा दिल इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बात को स्वीकार नहीं करता कि एक नागरिक के नाते मुझे अपने समाज और शासन की आलोचना करने का भी अधिकार नहीं।'

मॅजिस्ट्रेट—हम आपकी बात से कुछ हद तक तो सहमत हैं, किन्तु आप सरकार के खिलाफ जनता को उभाड़कर राजद्रोह का काम कर रहे हैं।

पं. मधुसुदन—दुनियाँ का इतिहास साक्षी है कि गुलाम नागरिक की हरएक बात राजद्रोह समझी जाती है। क्या इसीलिये मै यह समझूं कि हमें बोलने और लिखने का भी हक नहीं? तब आप की प्रजातन्त्र प्रणाली है किस मर्ज की दवा?

मि. मुल्कराज कुछ क्षणों के लिये स्तम्भित हो गये। उनका हृदय कहता था कि कोर्ट के कठघरे में खड़ा हुआ यह लेखक ठीक कह रहा है, किन्तु अधिकार की ऐंठ और रोटी का सवाल उन्हें 'न्याय' को कानून के आगे झुकाने के लिये मजबूर कर रहे थे। साहस बटोरकर उन्होंने अंतिम बात कह दी—

'पंडितजी! कानून की रूह से आप दोषी हैं इसलिये मैं आप को तीन माह की सजा देता हूँ। मुझे आशा है कि आप भविष्य में इस तरह का कोई लेख न लिखेंगे।'

पं. मधुसूदन ने हँसते हुये कहा—आपने जो सजा दी है उसका स्वागत करने के सिवा एक भारतीय लेखक के नाते मैं कर भी क्या सकता हूँ, किन्तु भूलियेगा नहीं कि कानून के नाम पर न्याय का उपहास कर के राष्ट्र देवता के चरणों में आप को क्षमा नहीं मिलेगी।'

कुछ दिनों बाद जनता ने अखबारों में पढ़ा कि मि. मुल्कराज आय. सी. एस ने अपनी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मैं क्या समझूँ

सत्याग्रह का समय। पुलिस की लॉरी एक काँग्रेसी कार्यकर्ता को पकड़ने आई थी। लोगों की भीड़ लग गई। जनता का जन-नायक पकड़ा गया। कहीं कुछ कोई आवाज नहीं। अंग्रेज पुलिस कप्तान ने लोकनेता को लॉरी में बैठाया। लॉरी चलने लगी। जनता चिल्ला उठी—"महात्मा गांधी की जय।" पुलिस कप्तान ने जनता की कमजोरी भाँप ली थी। वह आग बबूला हो गया। अपनी अँग्रेजी सभ्यता को भूल कर चिल्ला उठा—'मारो सालों को।' लॉरी के भीतर बैठे हुए नवजवान लठैतों में से एक 'तोरी बहिन की बिटिया ... ...।' कह कर बाहर कूद पड़ा! मानो बजरंग बली की जय' कह कर कोई बाजी मारने जा रहा हो। वह अपढ़ गँवार क्या जाने कि उस के प्रांत में उसकी भी माँ-बहिने होंगी। उसके भाई-भतीजों के साथ अन्य प्रान्त की पुलिस भी वैसा ही व्यवहार कर रही होगी। खैर, उसके पीछे और भी दो चार उतरने को थे, पर अरे! यह क्या? मैदान साफ! कहीं किसी का पता नहीं! वह जनसमूह अगल बगल और पासवाली दुकानों में इस तरह दबक गया जैसे कबूतर अपने दरबों में। पुलिस कप्तान ने यह दूसरी बार कमजोरी देखी। चारों तरफ सन्नाटा देखकर कप्तान अपनी सीटपर बैठ गया और लठैत भी। लॉरी फिर चलने लगी।

मेरे दिलमें एक सवाल पैदा हुआ कि डेढ़ सौ बरसों तक 'शेरनी का दूध' कही जानेवाली अंग्रेजी भाषा और संसार के साहित्य में तेजस्वी कहे जाने वाले अंग्रेजी साहित्य के वातावरण में सभ्य बने हुये हमारे देश के लोगों की यह भारतीय बहादुरी है या यूरोपियन कायरता। मैं क्या समझूँ? क्योंकि वर्तमान लड़ाई में अक्सर एक बात अधिक सुनने में आती है, और वह यह कि यूरोपीय सेना बहादुरी से पीछे हटी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चक्कर क्लब

पात्र–घनचक्कर चतुर्वेदी, लोटूसिंग चौहान, बुद्धूराममिश्र, लक्ष्मी वाहन, चरण सेवक अग्निहोत्री। शहर के दीवाना होटल में रात्रिके ११ बजे यह पंच कमेटी बैठी थी। मजाक में लोटूसिंग ने कहा—भई, आज की बैठक के अध्यक्ष घनचक्कर ही सही। बीच में ही बुद्धूराम बोल उठे--वाह! क्या कहने हैं यार आपके! भला चक्कर क्लब के अध्यक्ष घनचक्कर न हों तो क्या लक्ष्मी बाहन होंगे। लक्ष्मी वाहन—क्या कहा आपने? अजी चतुर्वेदी कहिये चतुर्वेदी–चारों वेद जाननेवाले। लोटूसिंग–क्या बात कहते हो म्याँ! चारों वेद जानते होंगे इनके बाप दादे। घनचक्कर का भला वेदों से क्या मतलब।

बात को बढ़ती देख चरणसेवक ने कहा–अच्छा तो अब काम की बात शुरू करिये। सुना है कि अपने शहर में 'समिति' और 'सम्मेलन' दो संस्थाएँ हैं जिनका इतिहास तुम जानते हो। सम्मेलन ने चक्कर-क्लब से प्रार्थना की है कि दोनों को एक करा दिया जाय।

लक्ष्मी वाहन–बात तो ठीक मालूम होती है। 'एकता' नाम कितना प्यारा है किन्तु यह समिति-सम्मेलन याने स्त्रीलिंग पुल्लिंग का झगड़ा है, अत: मेरी तो समझ में नहीं आता कि सिर्फ स्त्रिलिंग या केवल पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग में पुल्लिंग या पुल्लिंग में स्त्रीलिंग किंवा स्त्रीलिंग-पुल्लिंग दोनों को खत्म करके उभयलिंग।

बुद्धूराम–अबे उल्लू! कुछ समझता भी है या योंही दार्शनिकता बघार रहा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लक्ष्मी वाहन—अच्छा तो भाई मैं चुप रहता हूं। तुम सुनाओ।

बुद्धूराम—कहिये चरणसेवकजी, आपकी क्या राय है?

चरणसेवक—दोनों संस्थाओं का एक होना जरूरी है। एक नगर में दो संस्थाओं से बदनामी होती है। पैसा व्यर्थ बरबाद होता है। ठीक ढंग से काम नहीं होता। प्रान्त की साहित्यिक शक्तियाँ संगठित नहीं हो पातीं, इत्यादि बहुत-सी बातें हैं।

घनचक्कर—सुना है कि आप सम्मेलन के मंत्री भी हैं?

चरणसेवक—जी हाँ।

घनचक्कर—तो इसीलिये आप इतने उत्सुक हैं समिति-सम्मेलन को एक कराने में, क्योंकि जबतक: दो संस्थाएँ हैं तबतक आप अपने नाम का प्रचार ठीक ढंग से नहीं कर सकते। समिति-सम्मेलन में आपके घर का पैसा तो खर्च होता नहीं, फिर आपको पैसे की फिक्र क्यों? बदनामी आप की नहीं चरणसेवकजी, वह तो उनकी होती है कि जिन के आप चरणसेवक हैं क्योंकि दुनिया देखती है कि उनके मुकाबले में दूसरे भी कोई काम करनेवाले हैं। साहित्य की गद्दी आप के लिये ही सुरक्षित नहीं है। रही बात शक्ति के संगठन की सो तुम में यदि कुछ साधना होगी तो जिस तरह छोटी नदियां समुद्र में मिल जाती हैं उसी तरह प्रान्त की शक्तियाँ आपके पास चली आयेंगी। आप इतने चिन्तित क्यों हैं?

लोटूसिंह—बलिहारी है चतुर्वेदीजी! तभी तो हमने आप को अध्यक्ष बनाया था! लिख दो सम्मेलनवालों को कि तुम्हारी प्रार्थनापत्र पर ध्यान देने की हमारे चक्कर क्लब को फुरसत नहीं है।

सर्व सम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका क्योंकि चरणसेवकजी तटस्थ रहे। चलो बहुमत से ही सही। चाय पीने के बाद बैठक का काम भी समाप्त हो गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वर्धा--एक पुण्यभूमि

वर्धा को मैं पुण्यभूमि लिखता हूँ। क्यों? क्या वहाँ कोई तीर्थ है? नदियों का संगम? नहीं। हमारे तीर्थ तो आजकल पाखण्ड के अड्डे बने हुए हैं। तो फिर वर्धा में ऐसा क्या है कि वह पुण्यभूमि का महत्व अपने में संजोये रखता है? कारण स्पष्ट है कि वहां हम चलते-फिरते और बोलते हुए साकार तीर्थों को, तपस्वी विद्वानों और महात्माओं के रूप में देखते हैं। मेरे लिये वर्धा का महत्त्व इसलिये भी है कि मैंने सन् २८ से ३७ तक जीवन के सुनहले दिन और रूपहली रातें वहाँ बिताई हैं। जब कभी वर्धा पहुँचता हूँ तो न जाने कितनी मधुर स्मृतियाँ और कितने दर्दीले संस्मरण जाग उठते हैं। मैं जो कुछ हूँ उस का बहुत कुछ अंश वर्धा मे बना या बिगड़ा है। आज वर्धा मेरे जमाने का नहीं रहा। मालूम होता है कि सेठ जमनालाल की 'श्री' से हीन होकर वह हतप्रभ हो गया है—जैसे पति के मरनेसे पत्नी विधवा हो गई हो।

नागपुर के दौरे में अब की बार अपने पुराने शिष्य किन्तु अब प्रिय मित्र—श्री उमाशंकर शुक्ल के यहाँ उतरा था। दिलमें एक बात उठी। क्या यह सन् ३० का उमाशंकर है? निश्चित रूप से नहीं। अब तो करीब डेढ़ दर्जन अखबारों का 'प्रतिनिधि' मिट्टी के तेल की रोशनी में रात को २ बजे तक जागकर साहित्य के कटीले पथ को अपनी साधना से साफ करता हुआ, एक जागरूक की तरह बड़ी सजगता के साथ अपने परिश्रम से अपना पथ निर्माण करते हुए चलनेवाला यह उमाशंकर—देखकर गद्‌गद् हो गया। सोचा कि हमारे प्रान्त की सोई हुई साहित्यिकता को जगाने के लिये यह युवक वरदान होगा बशर्ते कि पूँजीवादी समाज

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पद्धतिसे प्रभावित 'गुर्गे' इसके पथ में अभिशाप बनकर आडे न आयें। रात्रि के ९ बजे से प्रातःकाल ५ बजेतक भला किसे नींद आती और उसे सोने भी कौन देता ?

सुबह करीब ७॥ बजे शुक्लजी ने मुझे बोरगांव (वर्धा से एक मील की दूरी पर स्थित एक छोटा ग्राम) में उस प्रखर प्रतिभा और पाण्डित्य में डूबे हुए तपस्वी के दर्शन कराये जो नीचे से ऊपर तक साधना में तप तप कर साहित्यमय हो रहा है और जिसे साधारण लोग सभी सत्यभक्त के नाम से जानते और भाग्य-शाली लोग पहिचानते हैं। जान पडता है कि स्वामीजी का असर शुक्लजी पर भी पडा है।

'सत्याश्रम' में एक मन्दिर बना हुआ है। उसमें सत्य और अहिंसा की मूर्तियाँ साकार खडी हैं जो अपना परिचय स्वयं दे रही हैं। ईसामसीह और जरथुस्त, बुद्ध और महावीर स्वामी, राम और कृष्ण सभी हैं वहां! स्वामीजी से इस मन्दिर के सम्बन्ध में विशेष बातें जानने के लिये चर्चा की। उन्होंने जो कुछ कहा वह मेरे लिये नया तो नहीं था (क्योंकि मैं 'संगम' का पाठक हूँ) किन्तु मैंने देखा कि उनके बात करने के ढंग में एक ओर सरलता थी तो ज्ञान की गम्भीरता भी, आत्मीयता से भरा हुआ प्यार था तो संसार के प्रति कुछ उदासीनता भी और अमित सरलता के साथ नई सूजभरी मौलिकता भी। स्वामीजी कुछ अस्वस्थ से मालूम हुये। मैंने मासिक 'संगम' में उनकी एक कहानी पढ़ी थी। उसपर चर्चा करने पर उन्होंने दो चार चुटकले और सुनाये। वे बहुत ही पुरअसर थे। महात्मा गांधी से प्रभावित होते हुए भी स्वामीजी अपने स्वतन्त्र बिचार रखते हैं। सादगी, सरलता, मितव्ययिता, समय की सदुपयोगिता और परिश्रम करने की शक्ति आदि गुण उनमें स्पष्ट दीख पडेंगे। उन का अपना प्रेस है, अपना कागज का कारखाना, अपना अखबार। स्वामीजी ने बहुत लिखा है। यह सब योंही सम्भव नहीं है। धर्म-सम्बन्धी ज्ञान स्वामीजी का बहुत गहरा है। साहित्यिक दुनिया में रद्दे खाते खाते और साहित्यि मठाधीशों के हथकण्डों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के उतार चढ़ाव देखते देखते मैं भी कुछ समझने लगा हूँ। सहसा मेरे समान 'स्टंट' आदमी को कोई प्रभावित नहीं कर सकता लेकिन स्वामीजी की सरलता का मैं कायल हूँ और साथ ही उनकी कठोर साधना और परिश्रमशीलताका भी। उनके प्रति श्रद्धा लेकर मैं लौटा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एकाकी क्षणों में !!

अपने टेबल पर कुछ लिखने के इरादे से बैठा था। बैठे बैठे ही कल्पना लोक में पहुंच कर भावों में निमग्न हो गया। कुछ योंही ऊल-जलूल सोचता रहा।

दोस्त ने कहा—सौ रुपये दूँगा। अपनी आग को भीतर ही रखो।

मैंने कहा—तुम्हारा क्या बिगडेगा? भीतर ही भीतर आग धधककर मेरा खात्मा कर देगी।

दोस्त चुप था।

मैंने सोचा कि यदि मैं पत्थर होता तो गर्मी, ठंढी और बरसात की तरह दुनिया के सारे थपेडे भी सहता किंतु हाड मांस का आदमी होने के कारण सीने में मेरे भी तो दिल है। दुनिया उसे देखना नहीं चाहती। चाहती है वह भीतर ही भीतर सुलग कर खतम हो जाय। तो क्यों न ऐसा धधकूँ कि भभक भभक कर स्वयं नाश के साथ नवनिर्माण के लिए इस जर्जर विश्व को भी नष्ट कर दूं।

यह क्या? सर्वोच्च श्रेणी की टिकट सिनेमा देखने के लिए। मैंने सोचा—ये सिनेमा क्लब, सिगरेट, पान, चाय, नाचगाने और ऐसी ही बातों के लिए मेरे दोस्त कितना पैसा खर्च करते हैं मेरे लिए किन्तु यह कभी नहीं सोचते कि मेरे घर में खाने के लिए रोटियाँ भी हैं या नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दिल ने कहा--मित्र चाहते हैं कि किसी तरह मेरे ये शौक आबाद रहें अन्यथा मैं इनके आगे पीछे, इनके साथ साथ कैसे फिर सकूँगा ? पून्जीवादी यह हमेशा चाहता है कि गरीबों को ऐसी परिस्थिति में रखा जाय कि उनका जीवन सर्वांश में रईसों की इच्छापर अवलम्बित हो। हमारी मुफलिसी ने, सामाजिक बन्धनों ने, स्वार्थी साहित्यिकों ने, ईश्वर ने और धर्म ने हमें आज मजबूर कर रखा है। हम जानते हैं कि इस चालीस करोड के देश में उनचालीस करोड-का शायद यही हाल है अतः यह सम्भव नहीं कि ऐसी परम्परा अधिक समय तक कायम रह सकेगी। इसका नष्ट भ्रष्ट होना स्वाभाविक और निश्चित है।

क्या मेरी सेहत खराब हो रही है ? नहीं तो, मुझे तो कुछ ऐसा नहीं लगता।

पर यह क्या ? ठीक तो है। मेरे बदन पर उतनी चर्बी कहां जितनी मेरे दोस्त के शरीर पर है और न वैसी तोंद है। कुछ आगे बढा तो ध्यान में आया कि चालीस करोड के भारतवर्ष में यदि कुछ हजार छोड दें तो अधिक संख्यक लोग तो मेरे जैसे हैं। शायद ही एक लाख से अधिक हों मेरे दोस्त जैसे।

यदि भारतीय राष्ट्र का वास्तव में यही हाल है तो इसका नतीजा क्या होगा ? श्मशान में हम क्या देखते हैं ? धाँय धाँय जलनेवाली लपटें और फिर कहीं कुछ नहीं। चिर शांति।

"कल शामको पानी भरने नहीं आ सका बाबूजी। सत्यनारायण की कथा हती।" भावनाओं को दबा कर अचानक अपनी स्थिति पर आया था देखा कि पानीवाला मेरा बूढा सूरदास अपनी बुन्देलखण्डी मिश्रित हिन्दी में कुछ कह रहा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मजदूर का कमरा

दो औंधे और तीन चित लेटे हुए। एक दीवाल से टिका हुआ। मजदूरों का एक साहित्यिक दोस्त महेश भी बैठा हुआ बीडी फूँक रहा है। एक फटी सी बडी सतरंजी। कोने में चूल्हा। दीवाल के एक आले में मिट्टी के तेल की चिमनी। चार पाँच छोटे बडे मटके जिनमें रोटी पानी की आवश्यक वस्तुएँ। जलाने की कुछ लकडियाँ और दो तीन बोतलें। दीनू ने गृहस्थी नहीं बसाई, अविवाहित है वह। कमरे का दरवाजा खुला है। मकान में कोई खिडकी नहीं। दिन में भी कुछ अँधेरासा रहता है वहाँ। आजकल दो माह से मिल में हडताल चल रही है। मौके बे मौके दोस्त इकट्ठे हो जाते हैं और चलती है गप शप।

एक मजदूर—भैया कब तक बेकार रहता। एक सेठ के पास गया था, लेकिन उसने तो बारह रुपए बताए। क्या करता। वापिस आगया।

महेश—तुमने कहा नहीं सेठजी से कि बारह रुपए में घर खर्च कैसे चल सकता है ?

मजदूर—कहा तो था। सेठजी कहने लगे कि बारह रुपए की जवारी तेरह पायली (५ सेर की एक पायली) आती है और क्या चाहिए तुमको !

महेश—शर्म नहीं आई सेठजी को। उन्हें तो तीन सौ रुपया महिना चाहिए। उनकी बीवी और बच्चों को सप्ताह में दो बार सिनेमा चाहिए। बैठने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के लिए मोटर। खस की टट्टियाँ। फल और दूध। रहने के लिए अच्छा बँगला और उसके सामने एक छोटा बगीचा भी। उनकी बीबी का हुकुम बजाने के लिए एक नौकरानी और न जाने क्या क्या चाहिए। मजदूर तो सिर्फ जवारी फाँक लेगा! नमक, मिर्च, तेल, घी, लकडी मकान आदि की उसे कोई जरूरत ही नहीं है इनकी दृष्टि में। हमारे और इनके जीवन का जरा अंतर तो देखिए! किस तरह अपनी पशुता का प्रदर्शन करते हैं ये लोग जब कहते हैं—बारह रुपये तो बहुत अधिक होते हैं; इससे अधिक क्यों चाहिए!

दूसरा मजदूर—हाँ भैया महेश, तुमने तो दिल की बात कह दी। मैं जानता हूँ इस सेठ को। मिल मालिक के पास यह एक बार नौकरी माँगने पहुँचा था। मालिक अढाई सौ देना चाहते थे और यह सेठ कह रहा था कि इस मँहगाई के जमाने में अढाई सौ से क्या हो सकता है? कमसे कम तीन सौ तो मिलना ही चाहिए। पता नहीं दूसरों को ये लोग गधा समझते हैं या ऐसा ही कुछ और।

तीसरा मजदूर—(बीच में ही बात काटकर) क्यों महेश, आजका अखबार तो पढा ही होगा। क्या बात थी वह। मैंने सुना है कि कुछ लोग सरकार से भत्ता माँग रहे हैं।

महेश—हाँ भाई, सरकार के दामाद हैं न ये लोग। रात के अँधेरे में हाथ जोडते हैं और उजेले में अकड दिखाते हैं। जेल जाते समय जनता को कहते हैं कि 'स्वराज्य' लाने के लिए जा रहे हैं और वहाँ जाकर 'ए' क्लास के लिए झगडते हैं और भत्ता माँगते हैं सो अलग। मैं कहता हूँ कि जेल जाते क्यों हैं फिर ये? अपनी मौसी के यहाँ क्यों नहीं जाते या फिर ससुराल जाते। अच्छा बंगला और हलुवा भी मिलता। साथ में और भी कुछ व्यवस्था हो जाती।

दीनू—महेश सच कहता हूँ यार कि तुम्हारे बिना तो महफिल सूनी मालूम पडती है तुम साथ न देते तो ये हडताल के दिन पहाड हो जाते। ठीक कहता हूँ भैया। तुम्हारी बातों में जादू का असर है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

महेश—इन तारीफों ने ही तो मुझे बेकार बना दिया है।

दीनू—महेश ! शोषक वर्ग ऐसे साहित्यिक चाहता है जो उसके पाप पर पर्दा डालता रहे। पापों की तहों को जो उघाड दे, घावों को कुरेद कर धर दें, भला ऐसे साहित्यिक को ये लोग कैसे बर्दाश्त कर सकते हैं ? विश्वास रखो महेश, तुम्हारा स्थान इन चुने हुए स्वार्थी लोगों की जबान पर नहीं वरन कोटि कोटि जनता के हृदय में है। सुखकर मार्ग को ठुकराकर तुमने श्रेयस्कर मार्ग को चुना है।

(नीची नजर किए मौन होकर कुछ सोचता है और फिर अचानक कहने लगता है) शायद तुम ठीक कहते हो दीनू किन्तु मेरे कुछ साहित्यिक मित्र मेरी इस मनोवृत्ति को दुर्भाग्यपूर्ण कहते हैं।

दीनू—(सतेज होकर कहता है) यदि तुम्हारी प्रतिभा का उपयोग दुर्भाग्यपूर्ण है तो तुम्हारे उन पत्रकारों और संपादकों का पापपूर्ण है जो स्वार्थ के लिए धनपतियों का जीवन चरित्र लिखकर सरस्वती को कलंकित करते हैं और पूंजीपतियों की लडकियों के विवाह पर उन्हें अपनी पुस्तक समर्पित करके साहित्यिकता की पवित्रता को अपमानित करते हैं। 'युद्ध प्रदर्शनी' अंक निकालकर चांद की चांदनी में 'जयचंद' बन जाते हैं तो सूरज की रोशनी में देशभक्ति की चादर ओढकर 'कांग्रेसमैन' बनजाते हैं। कितने हैं ऐसे संपादक जिन्होंने धन के सामने सिर नहीं झुकाया। भैया महेश ! इनके ये अखबार तो रोटी कमाने के साधन हैं। कितने हैं ऐसे अखबार जो अंधेरे में धनपतियों के चरणों पर न्योछावर न हुए हों और उजाले में मुखपृष्ठ पर 'सर्वश्रेष्ठ प्रखर राष्ट्रीयता' का ट्रेडमार्क लगाकर न निकले हों।

महेश—(दीनू के कंधे पर हाथ रखते हुए) तुम्हारे दिल में बडी आग है दीनू। काश तुम भी कोई लेखक होते।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तीसरा मजदूर—(औंधा लेटे लेटे ही) लेखक नहीं है तो क्या हुआ महेश बाबू, लेखकों को लिखने का मसाला देनेवाला तो है।

(सब लोग हँस पड़े। कमरा कहकहे से गूँज उठा)

" दीनू ! अरे ओ दीनू !! कोई घर में है "—एक लठैतने बाहर से आवाज दी।

दीनू बाहर निकला। लठैत से कुछ बातचीत की। फिर भीतर आगया। दोस्तों ने पूछा तो पता चला कि सेठजी का आदमी मकान का किराया माँगने आया था।

दो माह का ६ रु० ६ आने। सन्ध्या हो चली थी। एक उदासी के साथ धीरे धीरे दोस्त उठे और चल दिए। दीनू अनमना सा वहीं बैठा रहा। उसके यहाँ आटा नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कलकत्ते के अनुभव

अकोलाकी श्री० राधादेवीजी गोइनका के आग्रहसे ता० ७ सितम्बर ४० का सूर्यदर्शन कलकत्तामें करना पड़ा। बड़ी बड़ी अट्टालिकाएं, इधर उधर भागती हुई मोटरें, ट्राम और टक्सी कलकत्ता के वैभव का जबरदस्ती परिचय दे रही थीं पर मेरी आंखों में तो फुटपाथ पर पडे हुए गरीब, शारीरिक कष्टों से कराहनेवाले अपाहिज और मानसिक वेदनाओंसे संतप्त भटकते हुये युवक झूल रहे थे। न जाने क्यों वसन्त में भी मुझे पतझड़ नजर आ रही थी। सुना था कि संसारके गुरुदेव भारतकी संस्कृतिका निर्माण गंगाके तट पर हुआ है किन्तु उसीकी पार्श्व-भूमि पर मैंने देखा—मानव मानवको खींचे लिये जा रहा है रिक्शेपर ! पशुता और प्रभुत्व दोनों प्रसन्न ! कहीं पैसा लेकर तो कहीं देकर !

परदा निवारक सम्मेलन के पण्डाल का दरवाजा ! प्रवेश द्वार पर ही मुझ से भीतर जाने का 'पास' मांगा गया और वह भी मेरे साथियों को छोडकर ! सोचने लगा कि सम्मेलन की अध्यक्षा श्री० राधादेवीजी के दूसरे साथी जब कि बिना पास के जा सकते हैं, तो उनके 'ट्यूटर' ने ही कौनसा पाप किया है। मेरे पास सम्मेलन का निमंत्रण पत्र भी था किन्तु एक तो मुझे पास बताने का अनुभव नहीं है और फिर सब को छोडकर मुझ से ही मांगने का मतलब ?

पण्डाल का अंतरंग। बडी मुश्किल से जगह मिली।

पण्डाल में मुझे 'जागरण' का विशेषांक मिला। मैंने भगवान को धन्यवाद दिया कि देनेवाले ने मेरा नाम नहीं पूछा, नहीं तो शायद वह देकर वापिस ले लेता। आखिर कलकत्ता जो ठहरा !! मैंने देखा कि विशेषांक के प्रायः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आधे लेख 'माहेश्वरी' और 'नवजीवन' में निकल चुके थे तथा श्री० राधादेवीजी के सम्बन्ध का लेख तो कई अखबारों में प्रकाशित हो चुका था। क्या करें, लेखक और सम्पादक का उत्कर्ष अब इसीमें रह गया है !!!

मैंने कार्यकर्ता सम्मेलन में दो व्यक्ति देखे—श्री बसंतलालजी मुरारका और श्री सीतारामजी सेकसरिया। प्रथम सज्जन से अकोला में मेरा परिचय हो चुका था और दूसरे का नाम श्रद्धा के साथ मैंने अपने मित्रों से सुन रखा था। पण्डाल में प्यास लगने पर प्रथम सज्जन का परिचय कुछ काम कर गया। मुझे तो शंका थी कि सम्मेलन की बीमार अध्यक्षा को जब कि एक अलग कमरे की व्यवस्था न होने से करवटें बदलनी पड़ी तो कोई ताज्जुब नहीं कि अपने राम को भी शायद पानी के लिये तरसना पड़े। भला हो श्री बसन्तलालजी का उनके आर्डर से हमें पानी मिल गया, अन्यथा 'गंगा के तटपर' भी प्यासा रहने की नौबत आ गई थी।

बेलूर में श्री मोतीलालजी राधाकिशन का बगीचा। शायद मारवाडी युवक संघ की ओर से सम्मेलन की अध्यक्षा को मानपत्र दिया गया था। पार्टी खाने की उमंग में कलकतिया बाबुओं का अपने मेहमानों को भूल जाना तो कोई अचरज की बात नहीं, किन्तु श्रीमान् सेठ किसनलालजी गोयनका के साथ मोटर में बैठे हम सब लोगों को सिविक्गार्ड के एक मोटे कप्तान का उतार देना कलकतिया सभ्यता का प्रदर्शन जरूर था। अध्यक्षाके पतिके साथ धक्के खानेमें कुछ रसगुल्लोंका सा आनन्द आता था, इसलिये अपने राम नये अनुभव की खुशियां मनाते थे। लाख धन्यवाद है श्रीमान मोहताजी को जिन्होंने हमें बेंच पर बैठा देख सेठ साहेब के साथ हमें भी 'बस' में लादकर खेतान हाउस पहुँचाया। रातको जब दोस्तोंने पूछा कि आप लोगोंने बारह क्यों बजा दिया तो सेठ साहेबने कह दिया—'यार ! कलकत्ता घूमने चले गये थे।' सच कहता हूँ कि सेठ साहेब किसनलालजीके समान मजाक पसन्द और बहादुर दिल आदमी मेरे साथ न होता तो अपने राम तो कलकत्ताके किसी कोनेमें बैठकर अलख जगाते नजर आते।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

श्रीमान मोहताजीकी कृपाको भी हम नहीं भूल सकते, आखिर 'ब्रह्म' के पिता और 'माया' के श्वशुरका इतना दयाशील होना जरूरी भी तो है।

कलकत्ताके अपने अनुभव लिखते समय यदि कालीजी को भूल जाऊं तो इस मजाक भरे संस्मरणके लिये शायद वह मुझे क्षमा न करें। दरवाजेके बाहिर लोग बिना मांगे ही फूल देने लगते हैं तब अनजान आदमी समझने लगता है कि बड़े सज्जन हैं यहाँ के लोग। पर पैसा मांगते ही उनकी मक्कारी खुल जाती है। प्रवेशद्वार पर दक्षिणा देनेके बाद (मेरी तरफसे दक्षिणा देनेका काम मेरे मित्र श्री बैजनाथजी डालमियाँ करते थे) बिना मांगे ही एक आदमीने मुझे सूतकी माला पकडा दी। साहित्यिकोंके पास धरा ही क्या है कि जो इन पण्डोंके हाथ फैलाने पर मैं कुछ टपका देता। भीतर कालीजीके दर्शन करनेके लिये फिर पैसे मांगे जाते हैं। वहां एक पुजारीने मना करने पर भी जबरदस्ती मेरे मस्तक पर सिन्दूर लगाकर आशीर्वाद दे ही तो दिया। करोड़पतियोंके मास्टरको किसीसे सस्ता आशीर्वाद लेनेकी शायद आदत नहीं रहती, इसलिये पुजारीजीको मुझसे निराश ही होना पडा। हम सब बाहिर खडे रहे और हमारी पार्टीमेंसे सिर्फ एक महिलाको पुजारीजीने भीतर आने दिया। उन्होंने सवा रुपयेका प्रसाद कालीजीको चढाया और भक्तिभावसे आंखें बन्द कर हाथ जोडे। आंख खोली तो पेडे गायब! मैंने सोचा, चलो अच्छा ही हुआ। यह निष्ठुर कालीजी कभी निरीह पशुओंका बलिदान लिया करती थीं अब इसने कार्यकर्ता सम्मेलनसे प्रभावित होकर अपने भोजन में 'सुधार' कर लिया है—आखिर पेडे मीठे भी तो होते हैं!

अपनी नवीन स्मृतियोंको लिये हुए १० सितम्बरकी रातको बिदा होनेके समय कलकत्ताको मैंने प्रणाम किया। इस मौके पर श्री राधादेवीजीकी याद मेरे दिमागमें घूम जाना स्वाभाविक था; जिनकी मेंहरबानीसे मैं कलकत्ताके राजस्थानी समाजसेवियोंके शुभ दर्शन कर सका।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यह कैसी मनोवृत्ति ?

कपड़े की दूकान। यह क्या ? दूकान के सामने एक मोटर आकर खड़ी हुई। उसमें से एक बाबू साहेब उतरे। दूसरे एक पत्रकार और लेखक। साथ में अपने राम भी।

आइस क्रीम सोडा और पान से स्वागत हुआ। दूकानदार अतिथियों के पुराने मित्र थे। भोजन के लिए अतिथियों ने इंकार कर दिया क्योंकि वे घर से खा पीकर आए थे।

इधर उधर की बातें हुईं। बाबू साहेब पर शायद अपने बड़प्पन की शान जमाने के लिए दूकानदार ने कहा—क्यों महेश, याद है तुम्हें ? जब तुम स्कूल में पढते थे तब मैंने तुम्हें लात मारी थी और तुम रोते रोते प्रधानाध्यापक के पास शिकायत करने गये थे।

महेश बडा संकोची स्वभाव का था। इस बेहूदी और बेढंगी बात को सुनकर बहुत शरमाया। बाबू साहेब की दृष्टि में वह एक प्रभावशाली पत्रकार और लेखक था। इस तरह अपनी तौहीन होते देख उसने चुप रहना ठीक न समझा। था भी वह जरा चलता-पुर्जा। झट से उत्तर दिया—क्यों जनाब, याद है होली के दिन का। मैंने तुम्हें जूता मारा था। घर आने पर तुम्हारे पिताजी ने भी खूब पिटाई की थी और कहा था कि जूते खाता फिरता है नालायक कहीं का।

दूकानदार—क्या बकते हो महेश बिलकुल झूठ ! तुमने मुझे कब जूता मारा था ! पिताजी नें मेरी कब पिटाई की थी !!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

महेश—क्यों झेंपते हो बच्चू। बाबू साहेब बैठे हैं इसलिए क्या ?

दूकानदार—तुम बड़े बुरे आदमी हो महेश।

इस तरह किसी को बदनाम करके दोस्तों की आँखों में बेइज्जत करना ठीक नहीं।

महेश—और तुमने लोगों को धोखा देकर मुनाफाखोरी में दस बीस हजार कमा लिए इसलिए शायद तुम्हें दूसरों को चाहे जो कहने का 'अधिकारपत्र' मिल गया है।

बात को बढ़ते देख बाबू साहेब ने परिस्थिति को भाँप लिया और बात बदलते हुए कहने लगे—क्यों महेशजी, वह खबर तो आपकी बड़े शानदार ढंग से छपी थी। वह क्या खूब लिखा था आपने। हमारे यहाँ तो बड़ी चर्चा रही उसकी।

दूकानदार—(जैसे नींद में से उठा हो) हां, महेश ! मैं तो भूल ही रहा था। मेरी यह खबर जरा अखबारों में भिजवा देना।

महेश—हाँ, हाँ, जरूर। कहिए कौन सी खबर है आपकी ! जो कुछ हो लिखकर भिजवा देना।

दूकानदार—नहीं भैया, मै नहीं लिखूँगा। मैं बोलता जाऊँगा। जरा तुम्हीं लिखलो न !

महेश—तुम्हारा नाम हम किसी को नहीं बतायेंगे। यह तो सिर्फ हमारी जानकारी के लिये रहेगा।

दूकानदार—क्या मेरी बात पर तुमको इतना भी विश्वास नहीं ?

महेश—('विश्वास' शब्द पर महेश को बड़ा गुस्सा आया और सतेज होकर कहने लगा) लोगों का गला काटने वाले तुम मुनाफाखोर व्यापारियों ने अपना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जन्मसिद्ध अधिकार समझ लिया है कि तुमपर सारी दुनिया विश्वास करे और तुम किसी पर विश्वास न करो। तुम चाहते हो कि मैं तुम पर विश्वास करूं और तुम्हारी अंट संट खबर अखबार को भेज दूं लेकिन मेरी जानकारी के लिए भी तुम अपने हाथ से लिखी हुई तुम्हारे मतलब की खबर भी देने में तुम मेरा विश्वास नहीं करते। कैसी है यह तुम्हारी मनोवृत्ति।

निशाना इतना ठीक लगा था कि दूकानदार निरुत्तर हो गया। बाबू साहेब तो महेश की प्रतिभा और चलते पुरजेपन को पहिले से ही जानते थे अब और विश्वास हो गया कि महेश बुद्धू नहीं है।

गंभीरता को भंग करते हुए बाबू साहेब ने फिर एक नई बात छेड दी। क्यों महेशजी, आपकी वह नई पुस्तक इनको भी (दूकानदार की ओर इशारा करते हुए) दीजिए न। सौ पचास रुपये इनसे भी ले लो। पुस्तक बाद में भिजवा देना।

दूकानदार —नहीं बाबू साहेब, भला आप कहें और मैं इनकार कर सकता हूं। सौ पचास की तो बात ही क्या है पर क्या करूं। इस वर्ष काकाजी मर गए हैं। आप तो जानते ही हैं कि मैंने सब लेन देन का काम बंद कर रक्खा है।

महेश (बीच में ही बोल उठा) और मुनाफा लेने का भी काम बंद कर रखा होगा ? अपने ऐश आराम और खाने पीने के भी सारे काम काकाजी के लिए बंद कर दिए होंगे ?

इतने में ही बाबू साहब का ड्रायव्हर होटल से चाय पीकर आ गया था। उसे देखते ही वे उठ खडे हुए। नमस्ते का आदान प्रदान हुआ। मोटर में बैठकर महेश के साथ बाबू साहेब तो चल दिए किन्तु मैं रास्ते में सोचता चला आ रहा था कि यह कैसी मनोवृत्ति है इन लोगों की।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रश्न चिन्ह घूम रहा है ?

"हम आपके मकान पर आये थे। आप मिले नहीं," कुछ प्रश्न सूचक 'टोन' में मुझ से कहा गया। वह भो कोतवाली में बुलाकर। मैंने उत्तर दिया— 'मैं देवता तो हूँ नहीं। मुझे क्या मालूम कि जनाबमन तशरीफ लाने वाले हैं।' जरा सजग होकर सबइन्सपेक्टर की बगल वाले जमादार ने अपने साहब को खुश करने के लिये कहा—'आप कैसी बातें करते ह !' मैंने कहा— बात तो ठीक ही करता हूँ लेकिन गुलाम भारत को संतान होने के कारण मेरी सीधी बातें आप के दिमाग में उल्टी बनकर उतरती हैं। मैं लाचार हूँ।'

भला पुलिस वालों में इतनी सहनशीलता कहाँ जो एक नागरिक की बात को शान्तिसे सुनते और वह भी उनके अपने गढ़—कोतवाली में !! लेकिन इतने में ही सिटीइन्सपेक्टर साहब वहाँ आ पहुँचे। सबइन्सपेक्टरों और जमादारों ने अकडभरी सरलता से डटकर नम्रता की सलामी दी। सिटी इन्सपेक्टर मेरे परिचित थे। वे मुझे नमस्ते कर रहे थे और कोतवाली के लोगों पर मानों बरफ बरस रहा था। उनके जाते ही सबइन्सपेक्टर जरा नरम होकर मुझसे पूछने लगे— 'अच्छा, कहिये आपकी क्या शिकायत है ? आपकी एक दरखास्त आई थी। मैंने कहा—आपका यह जमादार अपने को खुफिया विभाग का बताता है। मुझे धमकी देता है कि सीधा भिजवा दूँगा—जेल में यदि आपने……हाँ, समझ जाइए।

यदि पुलिस विभाग जनता की सुख-शान्ति के लिये है तो आप इन्हें समझा दीजिये। हम तो प्रजातन्त्र के युग में भला कर ही क्या सकते हैं। मेरी अन्तिम बात घूमती हुई जरूर थी किन्तु साहब ने मौन होकर कुछ लिख लिया और मुझे बिदा दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मैं सोच रहा हूँ कि हमारे प्रान्त में हजारों खुफिया हैं। क्या प्रजा की सुख-शांति के लिये ? नहीं। बरतानिया की सरकार बनाये रखने के लिये ? नहीं, क्योंकि वे भी आखिर हिन्दुस्थानी हैं। तो क्या अपने पापी पेट के लिये ही यह सब कुछ ? मेरे मस्तिष्क में प्रश्न चिन्ह घूम रहा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रेल के डिब्बे में

रेलगाड़ी का वह पाँचवा डिब्बा था। प्लेटफार्म के ठीक सामने। मुशाफिरों का झुंड उसीपर टूट पड़ा। भीतर वाले बाहर निकलने का प्रयत्न करते थे। बाहर वाले उन्हें उलटा भीतर ढकेल रहे थे। भीतर वाले बेचैन थे बाहिर निकलने के लिए। बाहिर वाले घबरा रहे थे कि उन्हें जगह मिलने के पहिले ही कहीं गाडी छूट न जाय। खूब धक्कम धुक्की दरवाजे पर हो रही थी। भीतर वाले कहते—बेवकूफ हैं साले। उधर बहुत से डिब्बे खाली हैं किन्तु सब यहीं आकर मरते हैं। बाहिर वाले फुसफुसाते—कैसे हैं ये हिन्दुस्तानी हमारे भाई। हमें तो दो चार स्टेशन जाना है। कौन यहाँ घर बनाकर रहना है।

पुलिस ने आकर भीड़ को हटाया। भीतर वाले बाहिर निकले। बाहिर-वालों को भी किसी तरह बैठने को जगह मिली। डिब्बा ठसाठस भरा था। गाडी छूटने में ही थी। इतने में तीन चार नवयुवक उसी डिब्बे में आ धमके। भीतर वाले रोकते ही रहे। वे क्यों किसी की सुनने चले। मैं पहिले से ही उस डिब्बे में बैठा आ रहा था। बातचीत से आगंतुक युवक साहित्यिक मालूम होते थे।

गाडी चल पडी। एक युवक ने कहा—मूर्ख होते हैं हिन्दुस्तानी। देखिए न हमें भीतर आने से रोकते थे और ये ही जब हमारी तरह बाहिर होंगे तब गरज करते होंगे भीतर वालों की। इन्हें जगह मिल गई बस। दूसरे भाड में जायँ सब।

दूसरा युवक—उनका कसूर नहीं है भैया। गुलाम देश के लोगों की मनोवृत्ति ही ऐसी होती है। ये लोग अपना सुख देखते हैं; अपने साथियों का नहीं। यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अपना ही देश है, जहाँ के लोगों ने अपने सुख और स्वार्थ के लिए देश की स्वतंत्रता को विदेशियों के पास गिरवी रख दिया है।

पहिले युवक ने अन्य मनस्क होकर कहा—

देश का दुर्भाग्य है यह और क्या कहूँ।

कुछ देर के लिए वातावरण गंभीर हो गया। उनकी बातों में मुझे जरा मजा आ रहा था इसीलिए मैंने बातों का सिलसिला जारी कर दिया। पूछा—"क्या आप लोग सम्मेलन में शरीक होने जा रहे हैं? "जी हाँ, आप भी वहीं तशरीफ़ ले जा रहे हैं क्या?"

"नहीं जनाब मैं तो एक मजदूर हूँ। साहित्य सम्मेलन से मेरा क्या काम?" बिना दिलचस्पी के एक ने कहा—भाई! हमें तो 'साहित्य' की बीमारी लगी है। अच्छा है कि तुम इस बीमारी से बरी हो।"

मैं चुप हो गया किन्तु युवकों की बातें फिर शुरू हो गईं। एक ने कहा—भैया, मैंने पिछले वर्ष कविता सुनाई थी—

"लग रही है आग घर में और यह तेवहार कैसा?"

लोग लट्टू हो गये थे। कई बार फिरसे सुनाने का आग्रह किया किंतु आश्चर्य है कि गाँधी युग के गुर्गापंथी संपादकों ने मेरे तो नाम का भी उल्लेख नहीं किया और उन कवियों के लिये कई पंक्तियाँ लिखीं जिनकी कविता के समय "बैठ जाओ" और "नहीं सुनना चाहते" के नारे उपस्थित जनता ने लगाये थे।

दूसरा युवक—वे कवि गद्दीधारी होंगे या किसी पूँजीपति के आश्रित।

तीसरा युवक—किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं है कि सत्य का खून किया जाय। अब समय आ गया है कि इन मठाधीशों का खुले अधिवेशन में सामुहिक विरोध किया जाय। इन्हीं लोगों ने खस की टट्टियों और अपने रसगुल्लों के लिए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आजतक पूँजीवादी अत्याचारों का समर्थन किया है। इन प्रच्छन्न प्रगतिशीलों से सावधान रहना चाहिए।

चौथा युवक—डा० श्रीकृष्णलाल एम. ए. डी. फिल. ने ठीक लिखा है "भारतवर्ष में जब ब्राह्मणों की प्रभुता थी तब हमारे साहित्यकार वाल्मीकि और व्यास थे। मौर्य साम्राज्य के बाद क्षत्रियों की प्रभुता बढ़ने लगी और युग ने पलटा खाया। कालिदास और बाण हमारे सामने आए। बिहारी और पद्माकर के हमने दर्शन किए। अब अंग्रेजी राज्य के आविर्भाव से वैश्यों की प्रभुता स्थापित हुई। साहित्य और कला के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया।" क्या मैं यह समझूँ कि इस युग में साहित्य और कला के साथ रोटियों का सौदा करने वाले साहित्यिकों का यह सम्मेलन देश का उद्धार करेगा?

धडधड करती हुई ट्रेन स्टेशन के पास आ पहुँची। मुझे वहां उतरना था। मैंने अपने साहित्यिक साथियों को नमस्ते किया। घर आकर सोचने लगा कि इन तरुण साहित्यिकों का विद्रोह क्या अर्थ रखता है? हमारे ३० वर्षों के साहित्य सम्मेलनों का इतिहास क्या है? उस समय में सुप्रसिद्ध मासिक 'हंस' के 'प्रगति अंक' जून ४३ के शब्द मुझे याद आने लगे जो उसने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संबंध में प्रकट किए थे—देशकाल की सीमाओं के परे उनके प्रस्ताव सावन के अन्धे की हरेरी के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। वे सचमुच देशकाल की सीमाओं के परे हैं। निश्चय ही वे १९४३ के उस भारत के नहीं हैं जिसे हम आप राह चलते देखते हैं—किसी अपरिचित देश और काल से उधार माँगे हुए से जान पडते हैं।

Sri Pratap Singh Library Srinagar.

SPS
891.433 R 17 K
14459

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विदर्भ हिन्दी साहित्य समिति

का

तृतीय प्रकाशन

"बिखरी प्रतिभा"

शीघ्र प्रकाशित होगा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE